उत्तरकाण्डमें आये हुए प्रकरणों-प्रसंगोंकी सूची

संकेताक्षरोंकी तालिका

संकेताक्षर	विवरण
अ०	अयोध्याकाण्ड, अध्याय
अ० २०५, २। २०५	अयोध्याकाण्डका दोहा २०५ या उसकी चौपाई
अ० दी०च०	अभिप्राय-दीपक-चक्षु
अ० रा०	अध्यात्मरामायण
अमर०	अमरकोश
आ० रा०	आनन्दरामायण
अ०	अरण्यकाण्ड
अ० २, ३। २	अरण्यकाण्डका दूसरा दोहा या उसकी चौ०
उ०	उत्तरकाण्ड, उत्तरखण्ड (पुराणोंका); उत्तरार्ध; उपनिषद्;
उ० ११५; ७। ११५	उत्तरकाण्डका दोहा ११५ या उसकी चौ०
क०	कवितावली
क० ७	कवितावलीका उत्तरकाण्ड
कठ०	कठोपनिषद्
करु०, श्रीकरुणासिंधुजी	श्री १०८ रामचरणदासजीकी 'आनन्दलहरी' टीका
कल्याण	गीताप्रेसकी मासिक पत्रिका
का०, १७०४	काशीराजके यहाँकी प्रति
काष्ठजिह्व स्वामी	रामायणपरिचर्याकार श्रीदेवतीर्थ स्वामी
कि० १०, ४, १०	किष्किन्धाकाण्ड दोहा १० या उसकी चौ०
को० रा०	कोदोरामजीकी गुटका
खर्रा	पं० रामकुमारजीके प्रथमावस्थाके लिखे टिप्पण
गी०	गीतावली
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
गौड़जी	प्रो० श्रीरामदासजी गौड़ (स्वर्गीय)
(श्री) चक्रजी	श्रीसुदर्शनसिंहजीके टिप्पण 'मानसमणि' से
चौ०	चौपाई (अर्धाली)
छ०	लाला छक्कनलालकी पोथी
छां० ३। १३। ७	छान्दोग्योपनिषद् अध्याय ३ खंड १३ मंत्र ७
टिप्पणी	पं० श्रीरामकुमारजीके हस्तलिखित टिप्पण जो स्वर्गीय पुरुषोत्तमदत्तजीसे प्राप्त हुए थे।
तैत्ति० (तै०)	२। ४ तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली २ अनुवाक ४
दीनजी	लाला भगवानदीनजी (स्वर्गीय)
दो०	दोहावली; दोहा;
नं० प०, श्रीनंगे परमहंसजी	बाबा श्रीअवधबिहारीदास, बाँध गुफा, प्रयाग।
ना० प्र०	नागरीप्रचारिणी-सभाका मूलपाठ
नोट	इससे जहाँ किसीका नाम कोष्ठकमें नहीं है वह टिप्पण प्रायः सम्पादकीय है।
प० प० प्र०	श्रीस्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वतीजी
पं०, पंजाबीजी	श्रीसंतसिंह पंजाबीजीके 'भावप्रकाश' टीकाके भाव।
प० पु०	पद्मपुराण
पाँ०, पांडेजी	मुं० रोशनलालकी टीका जिसमें पं० श्रीरामबख्श पाण्डेजीके भाव हैं।
पू०	पूर्वार्ध; पूर्व
प्र० रा०	प्रसन्नराघव नाटक
प्र० सं०	मानस-पीयूषका प्रथम संस्करण (१९२३-१९३४)
प्रा० सू०	प्राकृत सूत्र
बं० पा०	श्रीवन्दन पाठकजीके हस्तलिखित टिप्पण
बा० ३; १। ३	बालकाण्ड दोहा ३ या उसकी चौपाई।
बाहुक	श्रीहनुमानबाहुक
वि०, विनय	विनयपत्रिकाका पद
वै० सं०	वैराग्यसंदीपनी
बृह० आ० बृह०	बृ०—बृहदारण्यक
ब्रह्म० वै० पु०	ब्रह्मवैवर्तपुराण
भक्तमाल	श्रीनाभास्वामीरचित भक्तमाल
भ० गु० द०	भगवद्गुणदर्पण (वैजनाथजीकी टीकासे)
भा० ९। १०	श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९ अध्याय १०
भा० दा०	श्रीभागवतदासजीकी हस्तलिखित पोथी

संकेताक्षर	विवरण
भक्तिरसबोधिनी	भक्तमालकी टीका श्रीप्रियादासजी कृत
मं०	मङ्गलाचरण
मं० श्लो०	मङ्गलाचरण श्लोक
मनु०	मनुस्मृति
मा० क०	मानस-कल्लोलिनी
मयंक, मा० म०, मयूख	मानस-मयंककी टीका श्रीइन्द्रदेव-नारायणसिंहकृत
मा० श०	श्रीमन्मानसशंकावली श्रीमहादेवदत्तकृत
मा० सं०	मानस-पीयूषका सम्पादक
मा० हं०	श्रीयादवशंकरजी रिटायर्ड सबजजकृत तुलसी-रहस्य 'मानसहंस'
मुण्डक १। २। १२	मुण्डकोपनिषद् प्रथम मुण्डक द्वितीय खण्ड, द्वादश मन्त्र
यजु० ३१। १९। १	यजुर्वेदसंहिता अध्याय ३१ कण्डिका १९ मन्त्र १
(पं०) रा० गु० द्वि०	पं० रामगुलाम द्विवेदीका गुटका (१९४५ ई० का छपा)
रा० च० मि०	श्रीरामचरण मिश्रजी भयसरी (हमीरपुर)
रा० ता०	श्रीरामतापनीयोपनिषद्
पं० रा० व० श०	पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी (श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी)
रा० प्र०	रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश
रा० शं० श, रा० शं०	श्रीरामशंकरशरणजी
रा० बा० दा०	बाबा रामबालकदासजी रामायणी
श्रीरूपकलाजी	वैष्णवरत्न अखिल भारतीय श्रीहरिनाम-यशसंकीर्तनसम्मेलनके संचालक, भक्तमाल तथा भक्तिरसबोधिनी टीकाके प्रसिद्ध टीका-कार अनन्त श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी।
लं० १०३, ७। १०३	लंकाकाण्ड दोहा १०३ या उसकी चौपाई
वाल्मी०	वाल्मीकीय रामायण
वि० टी०	श्रीविनायकरावकृत विनायकी टीका
वि० त्रि०	पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी
वि० पु० ६। ५	विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय ५
वि० सा० रा०	विश्वसाहित्यमें रामचरितमानस (श्रीलमगोड़ाजी)
वी० वीरकवि	पं० महावीरप्रसादमालवीयकी टीका
वे० भू०	वेदान्तभूषण पं० श्रीरामकुमारदास (श्रीअयोध्याजी)

संकेताक्षर	विवरण
वै०	श्रीवैजनाथदासकृत 'मानसभूषण' तिलक
श० सा०	नागरीप्रचारिणीसभाद्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्दोंका कोष प्रथम संस्करण
शीला, शिला०	बाबा हरिदासजीकी टीका 'शीलावृत्त'
श्लो०	श्लोक
श्वे०, श्वे० श्व०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
सं०	संहिता, संवत्, संस्कृत
स०	सर्ग
सत्यो०	सत्योपाख्यान
सि० ति०	'सिद्धान्ततिलक' नामकी टीका जिसे पं० श्रीकान्तशरणसे लिखवाकर श्रीराम-लोचनशरणजीने पुस्तकभण्डार लहरियासराय व पटनासे प्रकाशित किया, जिसका छपना तथा प्रकाशन जुलाई १९४७ से तथा पटना हाईकोर्टके ११ मई १९५१ के एवं डिस्ट्रिक्ट जज फैजाबादके फैसलेसे जुर्म करार दिया गया है।
सु० १०; ५। १०	सुन्दरकाण्ड दोहा १० या उसकी चौपाई
सु० र० भा०	सुभाषितरत्नभाण्डागार
हनु०, हनु० ना०	श्रीहनुमन्नाटक
१६६१, १७०४, १७२१, १७६२	इन-इन संवतोंकी हस्तलिखित प्रतियोंका पाठ
[ ] ( )	कोष्ठकान्तर्गत लेख प्राय: सम्पादकीय हैं जहाँ किसीका नाम नहीं है।

स्मरण रहे कि—(१) बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तरकाण्डोंके लिये क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६ और ७ सूचक अङ्क दिये गये हैं।

(२) किसी भी काण्डकी टीकामें जब उसी काण्डका उद्धरण उदाहरणमें दिया गया है तो प्राय: उस काण्डका सांकेतिक चिह्न (बा०, अ०, अ० आदि वा १, २, ३ आदि) न देकर हमने केवल दोहे-चौपाईकी संख्यामात्र दे दी है। जैसे उत्तरकाण्डमें ११०। ५ का तात्पर्य है उत्तरकाण्डके दोहा ११० की चौपाई ५। बालकाण्डमें ३३। २=बालकाण्डके दोहा ३३ की चौपाई २। इत्यादि।

(३) प्रत्येक पृष्ठके ऊपर दोहा और उसकी चौपाइयोंका नंबर दिया गया है। जिससे पाठकको देखते ही विदित हो जाय कि उस पृष्ठमें उन चौपाईयोंकी व्याख्या है।

काण्डमें आये हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम

अमरकोश

अमरविवेक टीका

अष्टावक्र

आह्निक-सूत्रावली

उत्तररामचरित

उपनिषद्:—ईशावास्य०, कठ०, केन, छान्दोग्य, गर्भ, तैत्तिरीय, प्रश्न, बृहदारण्यक, माण्डूक्य, मुण्डक, श्रीरामतापनी, शिशु, श्वेताश्वतर, सुवाल०, त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्

कवितावली

कोश—अमर, चन्द्रकोश, हिन्दी विश्वकोश, हिंदी शब्दसागर, हैमकोश, हारावलीकोश।

गीतारहस्य (श्रीबालगंगाधर तिलक)।

गीतावली

चन्द्रालोक

चन्द्रकान्त

जिज्ञासा पंचक

दोहावली

धर्मसारसंग्रह (श्रीगौड़जी)

नारदभक्तिसूत्र

न्याय

पंचरात्र

पाराशरस्मृति

पुराण—पद्म, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, नृसिंह, श्रीमद्भागवत, मत्स्य, महाभारत, विष्णु, स्कन्द।

प्रसन्नराघव नाटक

प्रबोधचन्द्र नाटक

प्राकृत सूत्र

बरवै

वैराग्यसंदीपनी

विनयपत्रिका

ब्रह्मसूत्र

भक्तमाल (श्रीनाभाजी)

भगवद्गुणदर्पण

भक्तिरसबोधिनी टीका (श्रीप्रियादासजी)

भक्ति-विजय

भर्तृहरिशतक

भोजप्रबन्धसार

मंगलविधान

मनुस्मृति

मानसमणि

मानस-मयंक

माधवनिदान

मानस-तत्त्व-प्रकाश

मानसकल्लोलिनी

मानस-भूमिका (श्रीगौड़जी)

मानस-रहस्य (सरदार कवि)

माधुर्य केलिकादम्बिनी

याज्ञवल्क्यस्मृति

(श्री) युगलानन्यशरणजीकी जीवनी

श्रीभगवानसहायजी-लिखित

योगवासिष्ठ

योगसूत्र

रघुवंश

रत्नमाला

रहस्यत्रय (अग्रस्वामी)

रामचन्द्रिका

(श्री) रामचरित-पुष्पाञ्जलि

रामस्तवराज

श्रीमद्रामप्रसाद-ग्रन्थमाला

रामार्चनचन्द्रिका

रामायण—अध्यात्म, आनन्द, अद्भुत,

महारामायण, वाल्मीकीय इत्यादि।

रूपमाला अव्ययार्थ भाग

बासन्तराज

विश्वसाहित्यमें रामचरितमानस

विष्णुपुराण

विष्णुसहस्रनाम

विज्ञान (मासिक पत्रिका)

शतश्लोकी

शिवसंहिता

श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीशांकरभाष्य

,, ,, श्रीरामानुजभाष्य

श्रीमद्भागवत श्रीधरी टीका

श्रीरामचरितमानसकी कुछ टीकाएँ—श्री १०८ रामचरणदास करुणासिंधुकृत; श्रीसंतसिंहजी पंजाबी ज्ञानीकृत; मुं० रोशनलालजीकृत (श्रीरामवख्श पाण्डेजीकी); श्रीबैजनाथदासजीकृत; श्रीरामायण-परिचर्या, परिशिष्ट, प्रकाश; बाबा हरिदासजीकृत शीलावृत्त, विनायकी टीका, पं० महावीरप्रसाद मालवीयकृत बाबू श्यामसुन्दरदासकृत, मानसांक सिद्धान्ततिलक।

श्रीरामाज्ञाप्रश्न

सत्योपाख्यान

साधनपंचक स्तोत्र

हनुमानबाहुक

हनुमन्नाटक

☞ पं० रामकुमारजीके टिप्पण, श्रीरामदास गौड़जी, श्रीलाला भगवानदीनजी, श्रीरामशङ्कर शरणजी, श्रीरामचरण मिश्रजी, वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी, (स्वामी श्रीप्रज्ञानानन्द सरस्वतीजी तथा पं० श्रीविजयानन्द त्रिपाठीके टिप्पण जो इन्होंने मानस-पीयूषमें छपनेको दिये), तथा अन्य कतिपय लोगोंके अप्रकाशित टिप्पण जो उनके नामसे दिये गये हैं, वे सब किसी टीका आदिके नहीं हैं, रुपयेमें बारह आना अप्रकाशित टिप्पण ही हैं जो प्रेमियोंकी सेवामें इस तिलकद्वारा उपस्थित किये गये हैं। इन सबोंका सर्वाधिकार सुरक्षित है।

* श्रीगुरवे नम:*

उत्तरकाण्डके कुछ शब्दों और काममें आनेवाले विषयोंकी अनुक्रमणिका

भवसंतरण असम्भव 'साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥ जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्मनिरत पंडित बिज्ञानी॥ तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी।'

१५—कलिकालमें एकमात्र साधन यह है— 'रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं।' रामभजन ही एकमात्र साधन है। यही सबका मत है। यथा—'सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥ सबकर मत खग नायक एहा। करिअ रामपद पंकज नेहा।' 'श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥' 'श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥'

१६—'रघुवंशभूषणचरित श्रीरामचरितमानसके कथन, श्रवण, ज्ञानमात्रसे कलिमल और मनोमलका नाश हो जायगा और श्रीरामधामकी प्राप्ति होगी।'

१७—भक्तिपूर्वक श्रीरामचरितमानसमें अवगाहन करनेवाले मनुष्य संसारपतङ्ग घोर किरणोंसे दग्ध नहीं होंगे।

१८—प्रेमसहित इस कथाके श्रवणसे श्रीराम-चरणानुराग और निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

१९—जीव अनेक हैं।

२०—ब्रह्म, जीव और माया तीनों हैं।

२१—ब्रह्मसृष्टि अचल-अनादि है, 'विधि प्रपञ्च अस अचल अनादी' इसमें जो मैं-मोर तैं-तोर है वह बन्धनकारक है

२२—जीव परवश है, ईश्वर एक है और स्वतन्त्र है।

२३—जीव मायाके वश हो जाता है, माया ईश्वरके अधीन है

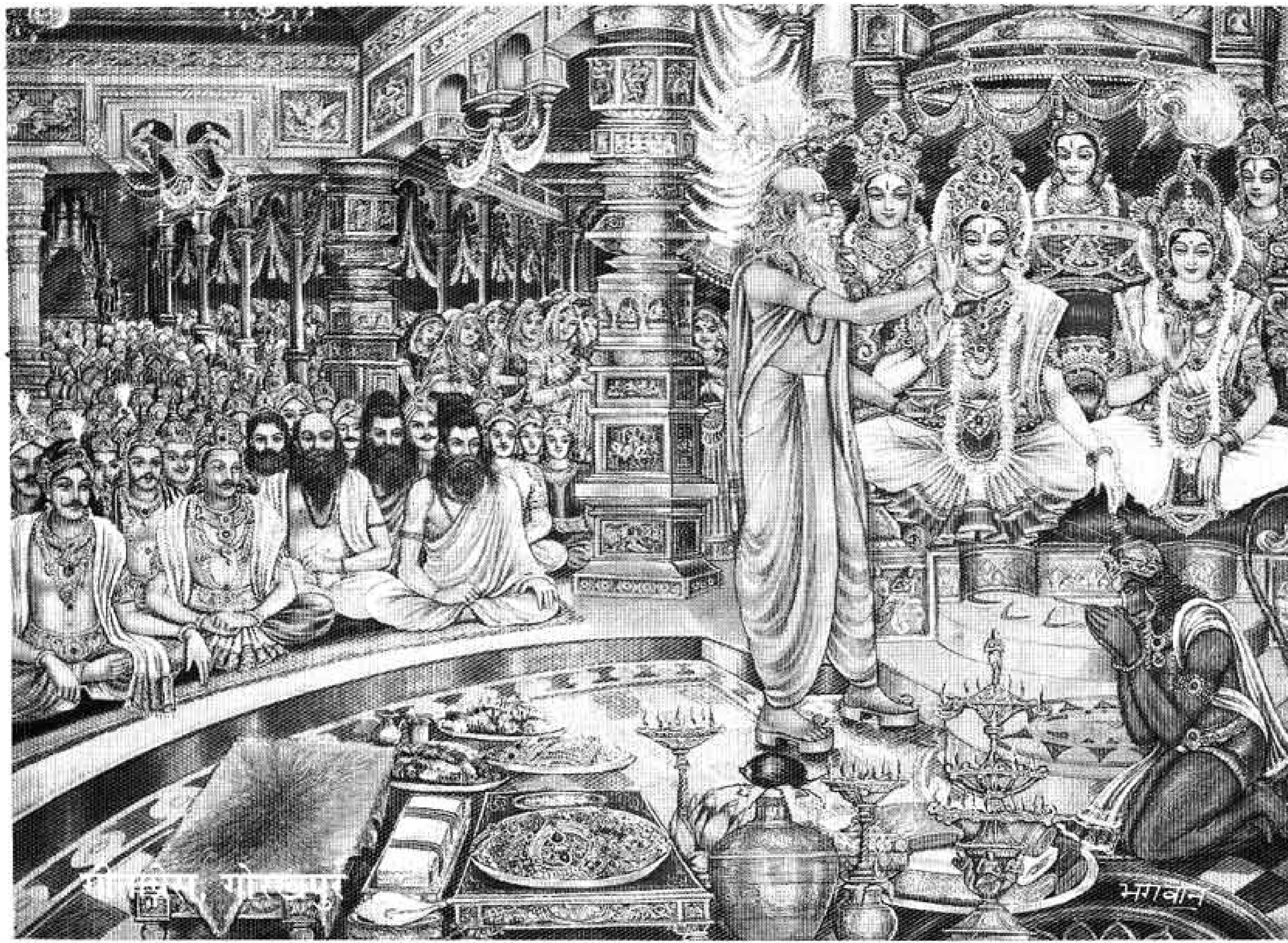
श्रीगुरवे नमः श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः, श्रीहनुमते नमः, श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः, श्रीभरद्वाजाय नमः, श्रीयाज्ञवल्क्याय नमः, साम्बशिवाय नमः, श्रीगरुडाय नमः, श्रीभुशुण्डिचरणकमलेभ्यो नमः।

श्रावण शुक्ला सप्तमी सं० २०१३

गुरु-वन्दन



धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥



भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक

* श्रीः *

ॐ नमो भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय।

श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः।

ॐ नमो भगवत्या अस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै।

श्रीसद्गुरुभगवच्चरणकमलेभ्यो नमः।

ॐ नमो भगवते मङ्गलमूर्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय श्रीरामदूताय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय शरणागतवत्सलाय श्रीसीतारामपदप्रेमपराभक्तिप्रदाय सर्वसंकटनिवारणाय श्रीहनुमते।

ॐ साम्बशिवाय नमः। श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः।

परमाचार्य्याय श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः।

श्रीरामचरितमानसाखिलटीकाकर्तृभ्यो नमः।

श्रीमानसपीयूषान्तर्गतनानाविधभावाधारग्रन्थकर्तृभ्यो नमः।

श्रीमानसपीयूषान्तर्गतनानाविधभावसूचकमहात्मभ्यो नमः।

सुप्रसिद्धमानसपण्डितवर्यश्रीसाकेतवासिश्रीरामकुमारचरणकमलेभ्यो नमः।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

अथ श्री

मानस-पीयूष

श्रीरामचरितमानस सप्तम सोपान

(उत्तरकाण्ड)

श्रीगणेशाय नमः

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते॥

श्लोक—

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं* शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥ १॥

शब्दार्थ—**केकीकण्ठाभनीलम्**=केकी+कण्ठ+आभ+नीलम्। (सं०-केकिन्। संज्ञा पुँल्लिङ्ग)=मोर, मयूर। **आभ (सं० आभा)**=कान्ति। **विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्**=विलसत्+विप्र+पाद+अब्ज+चिह्न। **विलसत्**=शोभा पाता है। **अब्ज**=जलसे उत्पन्न, कमल। **शोभाढ्यम्**=शोभा+आढ्यम्। **आढ्य**=सम्पन्न, पूर्ण, युक्त। पीतवस्त्र—'पीताम्बर' भी भगवान्‌का एक नाम है।=पीताम्बर धारण करनेवाले। **सरसिज**=तालाबमें होनेवाला अर्थात् कमल। **सर्वदा**=सदैव, हमेशा। **सुप्रसन्न**=सु+प्रसन्न=अत्यन्त. प्रसन्न।

☞ 'सु' उपसर्ग जिस शब्दके साथ लगता है, उसमें श्रेष्ठ, अत्यन्त, उत्तम, बढ़िया, सुन्दर आदिका भाव आ जाता है। **पाणौ**=दोनों हाथोंमें। **पाणि**=हाथ। नाराच—यह एक बाण विशेषका नाम है, यह सारा

---

* उरवर—(का०)। सुरवर—(रा० गु० द्वि०, भा० दा०)

'उरवर' पाठ दूषित कहा जाता है। दोष यह बताया जाता है कि एक तो उरस् शब्द सान्त है। दूसरे शुद्ध रूप रखनेसे छन्दके गणमें नुक्स पड़ जाता है—(रा० च० मिश्र)। रा० प्र० में 'उर' ही की पुष्टि की है। गौड़जी कहते हैं कि 'सुरवर' पाठ अधिक समीचीन है। विप्रचरणचिह्न इतना प्रसिद्ध है कि उसके लिये उरस् देशका निर्देश अनावश्यक है 'सुरवर' कहनेसे उसके बाद ही 'चरण-चिह्न' की चर्चा वरेण्यताके कारणका परिचायक होता है, अतः 'सुरवर' के अर्थका पोषक है।

लोहेका होता है और इसमें पाँच पङ्ख लगे होते हैं इसका चलाना बहुत कठिन होता है। शर और नाराचमें भेद यह है कि शरमें चार ही पङ्ख होते हैं और इसमें पाँच। विशेष ६। ७९। ९ देखिये। **बन्धुना**=छोटे भाईसे। बन्धु=जो सदा साथ या सहायक रहे, भाई। **सेव्यमानम्**=सेवा किये गये। **नौमीड्यम्**=नौमि+ईड्य=स्तुति योग्य यथा—'**नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं**·············' (लं० मं० श्लो०)। **ईडा**=स्तुति, प्रशंसा। **रघुवरमनिशम्**=रघुवरम्, अनिशम्। **अनिश**=निरन्तर, लगातार, अहर्निश, अविश्रान्त, अनवरत, नित्य। **अनिश**=अ+निशा=नहीं है रात्रि जहाँ। भाव कि रात्रिमें विश्राम होता है, सारे जगत्‌के कार्य बंद होते हैं पर यहाँ यह बात नहीं है। यहाँ रात्रिमें भी दिनके सदृश कार्य चलता रहता है मानो रात्रि हुई ही नहीं। **पुष्पकारूढ**=पुष्पक+आरूढ=पुष्पकपर चढ़े हुए। पुष्पक विमान हंसकी जोड़ीके आकारका एक दिव्य विमान है—लं० ११८ (४) (६) में देखिये।

अर्थ—मोरके कण्ठकी आभाके समान श्याम (वर्ण), देवताओंमें श्रेष्ठ, विप्र-(भृगुजी-) के चरणकमलके चिह्नसे सुशोभित (अर्थात् वक्ष:स्थलपर भृगुलता धारण करनेवाले), शोभासे परिपूर्ण, पीताम्बर धारण किये हुए, कमलसमान नेत्रवाले, सदैव अत्यन्त प्रसन्न, दोनों हाथोंमें नाराच-बाण और धनुष (अर्थात् दाहिने हाथमें बाण और बायेंमें धनुष) धारण किये हुए, वानर-समूहसहित, भाई लक्ष्मणजीसे सेवित, स्तुति किये जाने योग्य, श्रीजानकीजीके पति, रघुकुलश्रेष्ठ, पुष्पक विमानपर सवार श्रीरामचन्द्रजीको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।*

☞ यह पुष्पकपर सवार श्रीरघुनाथजीका ध्यान है। क्योंकि विमानपर प्रभु आ रहे हैं, अभी श्रीअयोध्याजी पहुँचे नहीं हैं और अगले श्लोकमें '*कोशलेन्द्र*' पद देकर राजसिंहासनासीन होना सूचित किया है।

यहाँ काण्डका आरम्भ मगणगणसे हुआ है, पृथ्वी जिसका देवता और जो श्रीका देनेवाला है। इस काण्डमें राज्याभिषेक और श्रीपति होना जना दिया।

नोट—'**केकीकण्ठाभनीलम्**' इति। (क) '*केकिकंठ दुति स्यामल अंगा।* (१। ३१६। १) देखिये। (ख) केकीकण्ठ अशुद्ध कहा जाता है। संस्कृत व्याकरणसे यहाँ समास होकर '**केकिकण्ठाभनीलम्**' होना चाहिये। इस दीर्घका समाधान कोई तो इस प्रकार करते हैं कि यह '**स्रग्धरावृत्त**' का श्लोक है। स्रग्धरावृत्तका प्रथम गण 'मगणगण' है। अत: मगणगणके अनुरोधसे इकारको दीर्घ कर दिया, जिसमें छन्दोभङ्ग न हो। पिछले काण्डोंमें भी कविने मगणगणहीसे मङ्गल किया है। अत: वह दोष नहीं है। (प्र० सं०)। कोई कहते हैं कि यह आर्षप्रयोग है। जैसे गीताके '**हे कृष्ण हे यादव हे सखेति**' का '**हे सखेति**' और वाल्मीकीयका '**पतिना वानरेन्द्रेण**' अशुद्ध है पर वे आर्षप्रयोग माने जाते हैं। ये लोग व्याकरणके गुलाम नहीं हैं। वैसे ही '**केकीकण्ठ**' को आर्षप्रयोग समझना चाहिये। वे० भू० जी कहते हैं कि अनन्त श्रीमधुराचार्यप्रणीता '***माधुर्यकेलिकादम्बिनी***' में भी '**तां वन्देन्दुकलां परां सुरसिकाचार्यां तु सीतासखीम्**'।'(१०) अशुद्ध है, वह भी आर्षप्रयोग है। पर यह श्लोक असली हस्तलिखित प्रतिमें नहीं है, किसीने यह श्लोक गढ़कर उसमें छपा दिया है। अत: यह प्रमाण नहीं माना जा सकता। गीतावाला श्लोक जिस दशामें उच्चरित हुआ है वह उस दोषका परिहार है। कोई कहते हैं कि छन्दकी दृष्टिसे ऐसा करनेका नियम है। यथा— '**अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं न कारयेत्।**'

कोई कहते हैं कि '**अन्येषामपि दृश्यते**' इस सूत्रसे इसका समाधान हो जाता है, क्योंकि कण्ठके साथ षष्ठीतत्पुरुष समास है। पर अन्य विद्वान् इस समाधानको पुष्ट नहीं मानते हैं। (प्र० सं०)

पं० विजयानंदत्रिपाठीजी कहते हैं कि संस्कृतव्याकरणसे '**केकि**·······' होना चाहिये, पर प्राकृतव्याकरणका विस्तार बड़ा भारी है। उसमें तत्समरूपसे शुद्ध संस्कृतरूपका भी ग्रहण है, तद्भवरूपसे विकृत प्रयोगका भी ग्रहण है (जिसके नियमानुसार ऐसे प्रयोग बनते हैं)। देशोद्भवरूपसे अनेक देशोंकी भाषाओंका भी ग्रहण है। गोस्वामीजीकी भाषाबद्ध करनेकी प्रतिज्ञा है। 'भाषा' शब्दसे उन्होंने प्राकृतका ग्रहण किया है।

* यहाँ 'भिन्नधर्मा मालोपमा' अलंकार है। यहाँ एक ही उपमेयके बहुत-से उपमान कहे गये हैं। और जितने उपमान आये हैं उन सबके पृथक्-पृथक् धर्मोंके वास्ते उपमा दी गयी है। यह 'स्रग्धरावृत्त' का छन्द है। विशेष लं० मं० श्लो० १ में देखिये।

यथा—'*जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने॥*' अतः उनका सम्पूर्ण ग्रन्थ प्राकृतके नियमोंसे शासित है। प्राकृत व्याकरणका नियम है कि '**इह छन्दानुरोधेन वर्णानां गुरुलाघवम्**' अतः '**केकिकण्ठाभनीलम्**' को '**केकीकण्ठाभनीलम्**' लिखना प्राकृतव्याकरणानुमोदित है।

(ग) '**केकीकण्ठाभ**' भी उपमा देनेका कारण यह कहा जाता है कि 'प्रभु इस समय विमानपर हैं जिसका आकार मयूरका है। श्रीरघुनाथजीकी द्युतिसे विमानका कण्ठ भी द्युतिमान है और विमानका प्रतिबिम्ब द्युतिसंयुक्त श्रीरघुनाथजीके तनमें जाकर पड़ा है जिसके संयोगसे महाराजकी द्युति भी केकीकण्ठवत् भासती है। अतः मोरके कण्ठकी उपमा दी। पुनः, मोर आकाशगामी है और बहुत ऊँचा नहीं उड़ता, प्रभु भी इस समय आकाशमार्गसे चले आ रहे हैं और विमान भी बहुत ऊपर नहीं है। अतएव मोरसे रूपक दिया। पुनः, अन्य काण्डोंमें श्यामताकी उपमा नीलजलज, जलद तथा नीलमणि आदिसे दी है। वे सब जड़ हैं, उनका सुख दूसरोंको होता है, उनको स्वयं सुख नहीं होता। इस काण्डमें मोरकी उपमा दी गयी जो चेतन है। मोरको स्वयं भी उस आभाका सुख होता है और देखनेवालेको भी। (मा० शं०) [नोट—बालकाण्डमें भी 'केकिकण्ठाभ' की उपमा दी गयी है। यथा—'*केकि कंठ दुति स्यामल अंगा।*' (१। ३१६। १) वहाँ दूलहरूपका छबिका ध्यान है। वहाँपर घोड़ेपर सवारी है और '*बर बरहि नचाव*' यह उत्प्रेक्षा भी की गयी है।]

२ (क) '*सुरवर*' का भाव कि आप मनुष्य नहीं हैं, आप तो ब्रह्मादि ईश्वरों तथा देवताओंके भी स्वामी हैं तथा परमदिव्य हैं। यथा—'*चिदानंदमय देह तुम्हारी।*' आप सबसे श्रेष्ठ और सबके रक्षक हैं, यथा—'*दीनबंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥*' (६। १०९। ३), '*जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥*' (६। १०९। ८) भगवान् शंकरने आपको इसी काण्डमें 'सुरेश' कहा है, यथा—'*अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो॥*' (१४ छंद २) और लं० मं० में भी यथा—'**मायातीतं सुरेशं·········देवमुर्वीश रूपम्।**' पुनः, 'सुरवर' कहकर '**विलसद्विप्रपादाब्जचिह्न**' कहनेसे यह भी भाव प्रकट किया कि भृगुलताको वक्षःस्थलपर धारण करके आप सब देवताओंसे श्रेष्ठ हुए। इससे देवताओंको भृगुजीद्वारा परीक्षा और भगवान् विष्णुका सर्वश्रेष्ठ होना भी सूचित कर दिया। '*बिप्रचरन देखत मन लोभा।*' (१। १९९। ६) में कथा दी गयी है। (ख) '**विलसत्**' का भाव कि इसे देख मन मोहित हो जाता है, यथा—'*बिप्रचरन देखत मन लोभा।*' (१। ११९। ६), '*उर धरासुर पद लस्यो।*' (६। ८५), (ग) '**विप्रपादाब्ज**' इति। भृगुजीके पदको कमलकी उपमा दी, कठोर न कहा; क्योंकि भगवान्ने उनके चरणके आघातको सहकर उलटे उनका चरण दाबा और कहा कि हमारे कठोर वक्षःस्थलपर लगनेसे इस कमल-समान चरणमें बड़ी पीड़ा हो गयी होगी। पुनः, '**विपपादाब्जचिह्नम्**' से ब्रह्मण्यदेव जनाया, यथा—'*प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना*' (विश्वामित्रवचन)। पुनः, (ङ) '**विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्**' कहकर आपके अङ्गों तथा हृदयकी असीम कोमलता दिखायी है कि वह चरण आपके वक्षःस्थलपर ऐसा उपट आया कि आजतक उसका चिह्न बना है। यथा—'*उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचति कोमलताई।*' (वि० ६२), इस चिह्नके धारण करनेसे आपके क्षमा, सौलभ्य और सौशील्य आदि गुण दर्शित होते हैं। ठीक ही है, जहाँ '*कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा*' है वहाँ उनके पादाब्जचिह्न धारण करनेकी क्या कहिये। (च) श्रीकरुणासिंधुजी लिखते हैं कि 'विप्रपादाब्जचिह्न' भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलपर है। प्रभु गुप्तरूपसे अवतरे हैं (यथा '*गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गए जान सबु कोइ।*' (१। ४८), इससे भृगुलता धारण किये हैं, जिसमें लोग उन्हें विष्णु ही समझें। बाल, रण और राज्य तीनों लीलाओंमें विप्रपदका वर्णन है। यथा—'*बिप्र चरन देखत मन लोभा।*' (१। १९९), '*भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो।*' (६। ८५) और यहाँ '**विप्रपादाब्जचिह्नम्**'। एवं करुण, वीर और शृङ्गार तीनों रसोंमें इसका वर्णन है। और पं० रामचरणमिश्रजीका मत है कि 'इस चिह्नको धारण करके अपनेमें और विष्णु-नारायणादि-रूपोंमें अभेद जनाया। अथवा, इससे श्रीरामजीकी कोमलताकी शोभा जनायी है, इससे आगे '**शोभाढ्यम्**' कहा।

गौड़जी कहते हैं कि—ब्राह्मणके चरण-चिह्नको वक्षःस्थलपर विराजमान दिखानेके दो अभिप्राय हैं। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीजीकी अग्नि-परीक्षाके समय ब्रह्मादि आकर कहते हैं कि आप तो साक्षात् 'नारायण' हैं, परीक्षा क्यों लेते हैं। उस प्रसंगसे नारायणावतारकी सूचना हुई। यहाँ उसी 'विचित्र कथा-प्रबन्धकी' ओर इशारा है। फिर ब्राह्मण रावणको सीताहरणपर दण्ड दिया है, सो भागवतापराधपर, क्योंकि यदि रावणने स्वयं भगवान्‌का अपराध किया होता तो उसी तरह सह लेते जैसे भृगुकी लात सही।

३ (क) **'शोभाढ्यम्, पीतवस्त्रम्'** इससे शरीरको सर्वशोभासम्पन्न जनाया और उसपर पीताम्बरकी छटा भी दिखायी। यथा—*'तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा।'* (१। ३१६। १), ***'बिमल पीत दुकूल दामिनि दुति बिनिंदनिहारु। बदन सुषमासदन सोभित मदन मोह निहारु॥*** (गी० ७। ८), ***'पीत निर्मल चैल मनहुँ मरकत सैल, पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही॥*** (गी० ७। ६), यहाँ 'पीत वस्त्र' से पीत वल्कल वस्त्र सूचित किये क्योंकि अभी पुष्पकारूढ़ वनवासी तपस्वी वेषमें हैं। अरण्यकाण्डमें जैसे **'पीताम्बरं सुन्दरम्'** कहा है वैसे ही यहाँ **'शोभाढ्यं पीतवस्त्रम्'** कहा है। (ख) **'सरसिजनयनम्'** से कमलदलके समान लंबे और करुणायुक्त नेत्र जनाये। श्रीरामजीके नेत्र कानोंतक लंबे हैं। यथा—**'कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम्'**॥ (स्तोत्र), **'राजीवायतलोचनम्।'** (आ० मं० श्लो० २) इसी तरह श्रीसीताजीके भी नेत्र हैं। यथा— **'आकर्णयाकर्णविशालनेत्रे।'** (हनु० १०। ७) (ग) **'सर्वदा सुप्रसन्नम्'** इति। पिताने राज्य सुनाकर वन दिया तब भी आपके हृदयमें ह्रास न हुआ, आप प्रसन्न ही बने रहे। यथा—***'राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू॥'*** (२। १६५) (श्रीदशरथवाक्य), ***'पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर। बिसमउ हरषु न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥'*** (२। १४९) ***'मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥'*** (श्रीकौसल्यावाक्य), ***'मन मुसुकाइ भानुकुलभानू। राम सहज आनंद निधानू॥'*** (२। ४१), ***'मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ।'''''बन गवन सुनि उर अनंदु अधिकान॥'*** (२। ५१), **'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः'** (अ० मं०) यह तो हुआ एक उदाहरण वनवासके सम्बन्धमें, पर वे 'सर्वदा' अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं, यहाँ यह कहकर जनाया कि *'सहज आनंद निधान'* हैं, उनका आनन्द सदा एकरस बना रहता है। इससे उनको ब्रह्म सूचित किया यथा—**'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'** (तैत्ति० ३। ६), **'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्।'** (तैत्ति० २। ४), ***'जो आनंदसिंधु सुख रासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥ सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥'*** (१। १९७), पुनः **'सर्वदा सुप्रसन्नम्'** का भाव कि जीव भी आनन्दस्वरूप होता है, तथा ***'चेतन अमल सहज सुखरासी।'*** पर उसका आनन्द सदा एकरस नहीं रहता और श्रीरामजी सदा एकरस अखण्डानन्दरूप हैं। यथा—***'जय राम सदा सुखधाम हरे।'*** (६। ११०), (ब्रह्माकृत स्तुति)। बैजनाथजी लिखते हैं कि इससे जीवमात्रपर आपकी कृपा सूचित की। यथा—***'सब पर मोहि बराबरि दाया।'*** (७। ८७), ***'सानुकूल सब पर रहहि संतत कृपानिधान'*** (७। ३०),

पंजाबीजीका मत है कि *'सरसिज नयन'* कहकर 'सदा सुप्रसन्नम्' कहनेका भाव यह कि कमल सदा विकसित नहीं रहता पर आपका मुखारविन्द सदा दिन-रात प्रफुल्लित रहता है।

४ (क) **'पाणौ नाराचचापम्'** से जनके दुःखके हरण करनेकी आतुरता दिखायी कि इनको सदा धारण किये रहते हैं जिसमें भक्तके दुःखहरणमें किंचित् भी विलम्ब न हो। (ख) **'कपिनिकरयुतम्'** से सामर्थ्य दिखाया कि ऐसे चंचल पशुओंको भी आपने वशमें कर लिया है। (ग) **'बन्धुना सेव्यमानम्'** कहकर जनाया कि बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे भाई सेवा करते हैं। यथा—***'सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई। प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥'*** (७। २५) और लक्ष्मणजी तो बालपनसे ही रामजीको ही अपना स्वामी जानते थे और सेवा करते थे, उसपर भी माताका उपदेश था कि श्रीरामजीकी ऐसी सेवा करना कि वे घर भूल जायँ। अतः **'बन्धुना सेव्यमानम्'** कहा। **'बन्धुना सेव्यमानम्'** से प्रभुका सौहार्दगुण कहा।

५ **'ईड्य'** का भाव कि ब्रह्मादि ही नहीं वरन् गुरु वसिष्ठ भी आपकी स्तुति इस काण्डमें करेंगे। **'जानकीशम्'** से जनक-ऐसे योगीकी कन्याके पति एवं ***'हरिहरहि हरता बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता***

जो दई। सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई', यह जनाया। यह भी जनाया कि ये वही हैं जिनकी कृपासे जीव जागता है। यथा—*'जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव'* (वि०)। गौड़जीका मत है कि *'जानकीस'* से जनाया कि जानकीजी साथ हैं, नहीं तो रामं, रघुवरं काफी था।

श्रीवैजनाथजी—प्रथम श्लोक इष्टवन्दनात्मक मङ्गलाचरण है। इसमें किंचित् ऐश्वर्य दरसाते हुए माधुर्यकी शोभा वर्णन कर प्रणाम करते हैं। **'सुरवर', 'पीतवस्त्रम्'** (क्योंकि पीताम्बर आपका एक नाम ही है) **'कपिनिकरसेव्यमानम्'** (देवता ही वानररूपसे सेवा कर रहे हैं) और *'रघुवर'* से ऐश्वर्य दर्शित किया। **'केकीकण्ठाभनीलम्'** इत्यादि अन्य विशेषणोंसे माधुर्य दर्शित किया। *'राम'* अर्थात् सबके मनको अपनेमें रमानेवालेसे मोहनरूप दरसाया।

प० प० प्र०—१ यह काण्ड सप्तम सोपान है। बालकाण्ड मं० श्लोक ७ में बताया है कि **'स्वान्तःसुखाय'** ही श्रीरामचरितमानसके प्रयोजनका फल है (और इस काण्डकी समाप्तिपर भी **'स्वान्तस्तमः शान्तये'** से भी यह बात कही है) अतः बाल० मं० श्लो० ७ इस काण्डका प्रतिनिधि है।

यह फल किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा यह इस काण्डके प्रथम श्लोकमें बताया है। अर्थात् इस श्लोकमें वर्णित श्रीरामरूपके ध्यान और चिन्तनसे तथा नमन और स्तुतिसे स्वान्तःसुख मिलेगा। दूसरे श्लोकमें उदाहरणरूपसे बड़े-बड़े लोगोंके नाम दिये हैं जिन्होंने स्वान्तःसुखके लिये ध्यानादि किये हैं।

इस काण्ड तथा इसके उपसंहारमें बताया है कि सभी लोगोंको स्वान्तःसुख (विश्राम) किस प्रकार मिला।

२—इस काण्डमें जितनी स्तुतियाँ हैं इतनी किसी भी काण्डमें नहीं हैं। बाल० में ६, अयो० में २, अरण्य० में ५, कि० में १, सुं० में १, लं० में ४ और इसमें ९ हैं।

मा० शं०—उत्तरकाण्ड नाम रखनेके कारण—१—'श्रीरघुनाथजी लंकासे श्रीअवधको उत्तर दिशामें आते हैं—*'मन महँ बिप्रचरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहिं बिमान चलायो॥'* (६। ११८), अब सब चरित उत्तर दिशामें होंगे। २—श्रीअयोध्याजीके चरित्रके दो भाग किये। उसमेंसे राज्याभिषेककी तैयारीतक पूर्वचरित है, बीचमें वनगमन हुआ; अब भूभार उतारकर श्रीअवधमें आनेपर राज्याभिषेकके पश्चात् जो चरित्र है वह उत्तरचरित है जो इस काण्डमें वर्णन हुआ। ३—बालकाण्डसे लेकर लंकातकके दोहे, चौपाई इत्यादिमें जहाँ-जहाँ यथार्थ अभिप्राय स्पष्ट नहीं प्रकट होता उन-उन श्लोकोंका यथार्थ स्पष्टीकरण आचार्यने उत्तरकाण्डमें किया है जिससे जिज्ञासुके सब काण्डोंकी शंकाओंका उत्तर हो जाता है। अतएव उत्तरकाण्ड नाम रखा गया। उत्तरकाण्डकी शंकाओंका उत्तर उत्तरकाण्डमें ही है। पूर्वार्द्धमें ही प्रायः छहों काण्डोंकी शंकाओंका उत्तर आ जाता है। (मा० शं०)

[☞ पूर्व प्रतिज्ञा है कि *'मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई॥'* जिन-जिन मुनियोंने रामचरित कहा उन-उनने सातवें काण्डका यही नाम रखा]।

☞ यह भी स्मरण रहे कि रामचरितमानसमें काण्डोंके नाम प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान इत्यादि हैं।

श्लोक—कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ*॥ २॥

शब्दार्थ—**कोसलेन्द्र**=कोसला+इन्द्र। **कोसला**=कोसल देशकी राजधानी; अयोध्याजी। **कोसल**=सरयूजीके दोनों तटोंका देश कोसल कहलाता है। इसके सात खण्ड पुराणोंमें कहे गये हैं। **इन्द्र**=देवराज; श्रेष्ठ, शिरोमणि, स्वामी। **मञ्जुलौ**=दोनों सुन्दर। **कोमलावज**=कोमलौ+अज। **कोमलौ**=दोनों कमल-समान हैं। **अज**=ब्रह्मा। **अजमहेशवन्दितौ**=ब्रह्मा और महेश दोनोंसे वन्दित (वन्दन किये गये)। **लालितौ**=दोनोंसे लालन किये गये। **लालित**=अत्यन्त प्रेमपूर्वक दुलराये, आदर और प्यार किये गये। **चिन्तकस्य**=चिन्तकके। **चिन्तक**=चिन्तन, बार-बार स्मरण वा ध्यान करनेवाला। **सङ्गिनौ**=दोनों संगी (साथी)।

* यह 'रथोद्धतावृत्त' छंद है। इसके प्रत्येक चरणमें ११-११ अक्षर होते हैं। स्वरूप यह है—रगण नगण रगण लघु गुरु (ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।, ऽ) अर्थात् पहिला, तीसरा, सातवाँ, नवाँ और ग्यारहवें वर्ण गुरु होते हैं।

अर्थ—कोसलपुरीके श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके दोनों सुन्दर और कोमल चरण-कमल ब्रह्माजी और शिवजी दोनोंसे वन्दित हैं—श्रीजानकीजीके करकमलोंसे अत्यन्त स्नेहसे दुलराये हुए हैं और चिन्तकोंके मनरूपी भौंरेके (सदा) साथी हैं। (अर्थात् ध्यान करनेवालोंका मन निरन्तर उन्हींमें लगा हुआ है। यह भाव ध्वनित है कि मेरा मन उन्हीं युगल चरण-कमलोंके ध्यानमें भौंरेकी तरह लगा रहे)॥ २॥

प्रथम श्लोकमें '**नौमि**' से नमस्कारात्मक मंगल जनाया। और इस श्लोकके आदिमें '**कोसलेन्द्र**' शब्द लेकर 'वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण' सूचित किया।

नोट—१ प्रथम श्लोकमें रूपका और इसमें चरणोंका मंगलाचरण किया। रूपका मंगलाचरण किया तब रूपकी वन्दना की, यथा—'**नौमीड्यं जानकीशं**……' और जब चरणोंका मंगलाचरण किया तब अन्तमें '**चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ**' कहकर जनाया कि इनका चिन्तन करना चाहिये और इनका सदा लालन एवं वन्दन करना चाहिये, यही मैं करता हूँ। इसीसे '**वन्दितौ**', '**लालितौ**', '**मनभृङ्गसङ्गिनौ**' विशेषण दिये हैं। ☞ '***वन्दितौ***' से वन्दन, '**करसरोजलालितौ**' से सेवा ('भजन') और '**चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ**' से चिन्तन-स्मरणके उपदेश मिलते हैं।

२—श्रीरघुनाथजी कोसलराज होकर ग्यारह हजार ग्याहर सौ ग्यारह वर्ष ११ मास ग्यारह दिन ११ घड़ी ११ पल राज्य करके फिर शीतल अमराईमें जाकर गुप्त हो जाते हैं अतः '**कोसलेन्द्रपद**' आदिमें देकर अन्तमें '**चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ**' कहकर यह कथा जना दी (और उपदेश देते हैं) कि अब इनके चरण-कमलोंका मनमें ध्यान, वन्दन और प्यार करो। और इसीसे यहाँ प्रत्यक्ष प्रणाम करना नहीं कहते।

३—'**पदकञ्जमञ्जुलौ**' कहकर जनाया कि चरणचिह्नोंसहित इनका ध्यान वा चिन्तन करना चाहिये। इनमें अनुराग करनेसे सब सुख प्राप्त हो जाते हैं। यथा—'***रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै। संकर हृदय भगति भूतल पर प्रेम अछयबट भ्राजै॥ स्यामबरन पदपीठ अरुन तल लसति बिसद नख श्रेनी। जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चली ललित त्रिबेनी॥ अंकुस कुलिस कमल धुज सुंदर भँवर तरंग बिलासा। मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजनमन मुदित मनोहर बासा॥ बिनु बिराग जप जोग जाग ब्रत बिनु तपु बिनु तनु त्यागे। सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभुपद प्रयाग अनुरागे॥***' (गी० उ० १५) पुनः 'मंगल कहकर यह भी जनाया कि कमल सदा एकरस सुन्दर नहीं रहते पर ये सदा सुन्दर बने रहते हैं।'

☞ यहाँ उपसंहारकाण्डमें भगवान्‌के चरणकमलोंको '**मञ्जुल**' कहा है और बालकाण्ड मं० श्लो० ७ में '**तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबंध**' को '**अति मञ्जुल**' कहा है। इस भेदसे जनाया कि जैसे '***राम ते अधिक राम कर दासा***' और '***ब्रह्म राम ते नाम बड़***' है वैसे ही '***राम ते अधिक***' उनका चरित है। श्रीरामचरितमानसके श्रवण, कथन आदिसे श्रीरामजीके मञ्जुल पदकञ्ज '**चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ**' हो सकते हैं यह सूचित किया। (प० प० प्र०) गीतावलीमें भी चरितकी महिमा ऐसी ही कही है। यथा—'***होइहैं सकल सुकृत सुखभाजन लोचन लाहु लुटैया। अनायास पाइहैं जनम फल तोतरे बचन सुनैया॥ भरत राम रिपुदवन लषन के चरित सरित अन्हवैया। तुलसी तब कैसे अजहुँ जानिबे रघुबर नगर बसैया॥***' (गी० १। ९) '***तुलसिदास अनुराग अवध आनंद अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई।***' (गी० १। २७) '***भूरि भाग तुलसी तेऊ जे सुनिहैं गाइहैं बखानिहैं।***' (गी० १। ७८)

४—'**कोमलौ**' इति। श्रीहनुमान्‌जीके हृदयपर इनकी कोमलता देखकर इनको पृथ्वीपर विचरते देख बड़ा धक्का लगा। उनसे सहा न गया, वे पूछ ही बैठे '***कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥***' (कि० १। ८) और फिर उन्होंने पैदल न चलने दिया किंतु '***लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई।***' इनकी कोमलता ऐसी है कि श्रीजानकीजी अपने परम सुकुमार करकमलोंसे इनका लालन करती हुई डरती रहती हैं कि कहीं दुख न जायँ।

प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि '**कोमल**' से अन्तःकरणकी कोमलता भी सूचित की है और यह आश्वासन दे रहे हैं कि कोसलेन्द्र शीघ्र द्रवीभूत होते हैं।

५—'**अजमहेशवन्दितौ**' यथा—'*देखे शिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥ बंदत चरन करत प्रभु सेवा॥*' (१। ५४) '**वन्दितौ**' में यह भी भाव है कि साक्षात् उन चरणोंकी सेवा उनको भी दुर्लभ है यद्यपि वे सेवाके लिये लालायित रहते हैं। अतः वे उनकी वन्दना किया करते हैं। पुनः '**अजमहेशवन्दितौ**' कहनेका भाव कि सृष्टिमें सबसे बड़े ये ही हैं, लोकमात्रके पूज्य हैं, जगद्गुरु हैं, जब ये ही कोसलेन्द्रपदकी वन्दना करते हैं, उन्हें माथा नवाते हैं तब भला इनको कौन न माथा नवायेगा? जो ऐसा न करें वे अभागे हैं यहाँ लक्षणामूलक गूढ़ व्यंग है।

६—'**जानकीकरसरोजलालितौ**' इति। वनमें साथ जानेके लिये उन्होंने कहा ही था कि '*सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥*' (२। ६७। ५) पर वहाँ तो यह सेवा प्रायः श्रीलक्ष्मणजीने बँटा ली थी। राज्याभिषेक होनेके पश्चात् इनकी यह सेवा '*जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई॥*' (२४। ४) तथा '*राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ।*' (२४) इन चौपाइयोंमें दरसा दी गयी है। इस पदसे जनाया कि श्रीजानकीजी जो '*उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥ जासु कृपाकटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ॥......*' (२४) ऐसी महिमावाली हैं जब वे ही उनका भजन (सेवा) करती हैं तब भला उनका भजन कौन न करेगा। सभीको करना उचित है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो अभागे हैं और समझना चाहिये कि कलिकालने उनको ठग लिया है।

७—'**चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ**' से जनाया कि चिन्तक उनका चिन्तन इस प्रकार करते हैं जैसे भ्रमर कमलपर लुब्ध हो उसका साथ नहीं छोड़ता। यथा—'*पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह माहीं॥*' (१। १४८) वैसे ही तू अपने मनको उन चरणोंमें आसक्त कर दे।

रा० प्र०—कोई तो इस श्लोकको क्रियाहीन मानते हैं, कोई कहते हैं कि इसके चारों चरणोंसे चार क्रियाएँ—स्मरामि, वन्दे, भजामि और चिन्तयामि—निकलती हैं, उनको क्रमसे ऊपरसे लगाकर अर्थ करना चाहिये, चार क्रियाएँ होती हैं इससे केवल एकका लिखना उचित न जानकर कोई भी क्रिया न दी और कोई श्लोकके अन्तमें '**नौमि**' का अध्याहार करके अर्थ लगाते हैं।

गौड़जी—'होना' क्रिया यहाँ विवक्षित है। संस्कृतमें 'है' लिखनेकी आवश्यकता कम होती है। यहाँ लक्षणामूलक अगूढ़ व्यंग है।

रा० च० मिश्र—क्रियारहित श्लोकसे जनाया कि ये पद भी पुरुषार्थी-क्रियारहित हो गये। अबतक (बालसे लङ्काकाण्डतक) पुरुषार्थ करके दुःख सहकर दूसरोंको सुखी किया और अब इन पदोंके स्मरण भजनादिसे ही सब सुखी होंगे।

सीताजी—'*सेवत चरन कमल मन लाई*' सुग्रीवादि—'*सबके प्रभुपद प्रीति*'

भरतादि—'*रामचरन रति अति अधिकाई*' पुरजन—'*श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं*'।

नोट—गोस्वामीजीने ग्रन्थके आदिमें जो श्रीरामजीका मङ्गलाचरण किया है उसमें 'पद' का वर्णन है—'**यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्**' और फिर इस अन्तिम सोपानमें पद-कमलका मङ्गलाचरण किया है। बीचमें कहीं नहीं। प्रारम्भमें बताया कि ये चरण ही एकमात्र भवतरणोपाय हैं और यहाँ अन्तमें भी वही बात कहते हैं, किस प्रकार ये चरण उपाय हैं उसको यहाँ इस 'क्रियारहित' श्लोकसे जनाया है कि इन्हींका स्मरण, इन्हींका वन्दन, इन्हींका भजन और चिन्तन करनेसे भवपार हो जाओगे। ये सब प्रकारसे निरुपाधि सुखदायी हैं।

गौड़जी—बालकाण्डमें पदोंकी ऐश्वर्यभावसे व्याजरूपसे ही वन्दना है। उनके माहात्म्यका वर्णन है। उत्तरकाण्डमें माधुर्यभावसे स्मरण, वन्दन, भजन और ध्यान है। ऐश्वर्यभावसे तो ध्यानद्वारा नमस्कार ही कर सकते हैं। माधुर्यभावसे भजन-सेवादिके अत्यन्त सान्निध्यका परम लाभ मिल सकता है।

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्नस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति।
स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत् पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य॥

बालकाण्डके व्याजसे चरणवन्दनाके उपक्रमका यहाँ व्याजसे उपसंहार है।

श्लोक—कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्*।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्॥ ३॥

शब्दार्थ—**कुन्द**=जुहीका-सा एक पौधा जिसमें बड़ी मीठी सुगंधवाले श्वेत फूल आश्विनसे चैततक फूलते हैं। यहाँ कुन्दके फूलसे तात्पर्य है। **इन्दु**=चन्द्रमा। **दर**=शङ्ख। **अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्**=अम्बिकापतिम्+अभीष्ट+सिद्धि+दम्। **अभीष्ट**=वाञ्छित, चाही हुई, आशयके अनुकूल। **सिद्धि**=सुख-समृद्धि=सब प्रकारकी सिद्धियाँ=किसी कामकी पूर्णता। **दम्**=देनेवाले। **शङ्करमनङ्गमोचनम्**=शङ्करम्+अनङ्ग+मोचन। **अनङ्ग**=बिना अङ्गवाला=कामदेव, यथा—'*अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंगु। बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसङ्ग॥*' (१। ८७) '*रति अति दुखित अतनु पति जानी।*' (१। २४७। ५) **मोचन**=छुड़ानेवाले।

अर्थ—कुन्दके फूल, चन्द्रमा और शङ्खके समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्रीपार्वतीजीके पति वाञ्छित फलके देनेवाले, दीन-दुःखितके दुःखसे पिघलकर उनपर दया करनेवाले, सुन्दर कमल-समान नेत्रवाले तथा कामदेवके (मदको एवं उसके जालसे) छुड़ानेवाले एवं कल्याणके करनेवाले श्रीशङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३॥

नोट—१ '**कुन्दइन्दुदरगौर**' इति। यहाँ भी कुन्द, इन्दुमें सन्धि होकर '**कुन्देन्दु**' का प्रयोग होना चाहिये था। अन्य स्थानोंमें ग्रन्थकारने भी सन्धि करके '**कुन्देन्दीवरसुन्दरौ**' आदि प्रयोग किया है। मानसमें प्राकृतके नियम प्रायेण काममें लिये जाते हैं। प्राकृतव्याकरण नियमानुसार उनका काममें लाना अनिवार्य नहीं है। इ या उ की सन्धि भिन्न वर्णसे नहीं होती। यथा—'न **युवर्ण स्या स्वे**' (प्रा० सू०)। अतः यहाँ कविका सन्धि न करना ठीक है। (वि० त्रि०)

नोट—२ (क) '**कुंदइन्दुदरगौरसुन्दरं**' के भाव कई बार लिखे जा चुके हैं। (बा० मं० सोरठा ४) '***कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। जाहि दीनपर नेह करहु कृपा मर्दन मयन॥***' '***कुन्द इंदु दर गौर सरीरा॥***' (१। १०६। ६) और '**शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुम्**' (लं० मं० श्लोक २)में देखिये। इनसे श्वेत, उज्ज्वल, शुभ्र और पुष्ट तथा लावण्यनिधि सूचित किया। ☞ ग्रन्थके आरम्भमें '***कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। ……मर्दन मयन***' कहा और अन्तमें भी वही विशेषण देकर मङ्गलाचरण किया। यह शिव-मङ्गलाचरणका उपक्रम और उपसंहार है। (ख) '**गौरसुन्दरं**' दो विशेषण देकर जनाया कि सब गौरवर्णवाले सुन्दर नहीं होते, गौरवर्ण असुन्दर भी होता है जैसे कुष्ठ रोगवालेका। पुनः, गौर वर्ण हुआ पर नेत्रादि किसी अङ्गमें भी कुछ नुक्स हुआ तो वह भी असुन्दर ही है। अतएव 'सुन्दर' विशेषण देकर जनाया कि आपका सर्वाङ्ग शरीर शोभासम्पन्न है। (मा० सं०) पुनः भाव कि ललाईरहित केवल ऊपर-ऊपर श्वेत वर्ण हो तो वह भी सुन्दर नहीं होता, अतः सुन्दर कहकर जनाया कि उनका गौरवर्ण ललाई लिये हुए है, इसीसे सुन्दर है। (रा० प्र०) (ग) '**अम्बिकापति**' का भाव कि श्रीपार्वतीजी जगज्जननी हैं, ये उनके पति हैं, अतः ये जगत्-पिता हैं। 'अम्बिका' का अर्थ है माता। '**अम्बिकापति**' कहकर '**अभीष्टसिद्धिदम्**' कहनेका भाव कि जगत्के माता-पिता होनेसे माता-पिताके समान ही वाञ्छित पदार्थ देते हैं। (रा० प्र०) '**अभीष्टसिद्धिदम्**' कहकर सब प्रकार समर्थ जनाया। जो समर्थ नहीं है वह मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकता।

२ (क) '**कारुणीक**' का भाव कि भक्तका दुःख सह नहीं सकते, तुरत उसके दुःखको दूर करते हैं। यथा—'***सकत न देखि दीन कर जोरे॥***' (वि० ६), '***जरत सकल सुरबृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तेहिं न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥***' (कि० मं०), '***करुनावरुनालय साइँ कियो है॥***' (क० ७। १५७) '***नौमि करुणाकरं गरलगंगाधरं॥***' (वि० १२), '***कर्पूर गौर करुना उदार……। उपकारी को पर हर समान। सुर असुर जरत कृत गरल पान॥***' (वि० १३) (ख) '**कलकञ्ज**' का भाव कि कमल सदा सुन्दर नहीं बना रहता वह मुर्झा जाता है पर आपके नेत्र सदा प्रफुल्लित रहते हैं। रा० प्र०

* मन्दिरम्—(का०)। यहाँ 'भिन्नधर्मा मालोपमा अलंकार है।'

कार कहते हैं कि 'कलकंज' से कमल-समान विकसित कहते हुए जनाया कि आप ज्यों-ज्यों अभीष्ट देते हैं त्यों-त्यों अधिक हर्षित होते हैं। यथा—*'नांगो फिरै कहै माँगनो देखि न खाँगो कछु जानि माँगिए थोरो॥'* (क० ७। १५३), *'देत न अघात·······॥'* (क० ७। १५९), *'दीनदयाल दिबोई भावत'* (वि०)। (ग) 'कारुणीक' कहकर कंजलोचन कहा क्योंकि करुणा आँखोंसे प्रथम प्रकट होती है। यथा—*'सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आये जल राजिव नयना॥'* (५। ३२। १) *'निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाये॥'* (३। ९। ८) इत्यादि। (घ) करुणा आनेपर दु:ख नष्ट करनेका उपाय किया जाता है अत: फिर 'शंकर' (कल्याण करनेवाले) यह पद दिया। कामके रहते कभी सुख वा कल्याण नहीं हो सकता, अत: फिर 'अनंग मोचन' कहा, यथा—*'काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥'* (७। ९०। १) आप दासोंकी रक्षा कामसे करते हैं, यथा—*'उर बसि प्रपंच रचै पंचबान। करि कृपा हरिय भ्रम फंद काम। जेहि हृदय बसहि सुखरासि रामु।'* (वि० १४) पुन:, 'अनंग मोचन' से यह भी जनाया कि आप सदा प्रभु रामजीको हृदयमें बसाये रहते हैं। *'शंकर हृदि पुंडरीक निबसत हरि चंचरीक निर्व्यलीक मानसगृह संतत रहे छाई॥'* (गी० उ० ३), *'संकर मानसराजमरालं', 'जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।'*

पं०—अनंगमोचनका भाव कि पार्वतीजीको अर्द्धाङ्गमें धारण किये होनेसे यह न समझना कि वे कामी हैं वे तो दूसरेको भी कामादिकसे मुक्त कर देनेवाले हैं।

रा० च० मिश्र—कथा प्रारम्भके समय भी भगवान् शंकरका स्वरूप ऐसा ही कहा है—*'कुंद इंदु दर गौर सरीरा', 'गई संभु पहिं मातु भवानी', 'बैठे सोह कामरिपु कैसे।'* सुन्दरताके रहते हुए कामनाशक कहकर कथा कहनेमें आदि-अन्त एकरस जनाया।

☞तीन श्लोकोंमें मङ्गलाचरण करनेके भाव अ० मं० श्लो० ३ और आ० मं० श्लो० २ में देखिये।

नोट—प्रत्येक काण्डके मङ्गलाचरणमें भगवान् शंकरकी वन्दना प्रथम अथवा पीछे करने तथा किष्किंधा और सुन्दरकाण्डोंमें उनकी वन्दना न होनेके भाव पिछले काण्डोंमें लिखे जा चुके हैं।

प्र०—स्वामीका मत है कि बालमें विश्वरूप तथा गुरुरूपसे, अयोध्यामें विश्वासरूपसे, अरण्यमें गुरुरूपसे उनका मङ्गल किया गया। किष्किंधामें संस्कृत श्लोकोंमें उनका मङ्गल नहीं किया गया पर रामनामसे मुक्तिदायक होनेके कारण मं० सो० २ में काशीके सम्बन्धसे उनका मङ्गल किया और सुन्दरमें उनके अवताररूपकी वन्दना है। इस तरह सातों काण्डोंमें उनका मङ्गल करके बताया है कि रामभक्तिके इच्छुकको शिवभक्ति करना आवश्यक है।

'जेहि बिधि राम नगर निज आये'—प्रकरण

(भरत-मिलाप)

दोहा—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥

शब्दार्थ—**अवधि**=मीआद, मुद्दत। **आरत**=बेतरह जी लगा हुआ। भारी व्याकुल, बेकरार, यहाँ 'आर्त्ति' प्रकृतिकृत आरत नहीं है प्रत्युत यह शुद्ध 'आरत' शब्द है। इस रूपके प्रयोगके लिये मिलान कीजिये—*'सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते॥'* (१। २२२। ८), (गौड़जी)। **कृस (कृश)**=दुबले, सूखे।

अर्थ—नगरके लोग आज बेकरार हो रहे हैं, बहुत व्याकुल हैं। श्रीरामजीके वियोगमें—दुबले शरीरवाले स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ (इकट्ठे होकर) सोच रहे हैं कि (आजका) एक ही* दिन अवधिका बाकी रह गया है। (और—)

---

* कोई-कोई 'एक' का अर्थ करते हैं कि 'ऐसा दूसरा नहीं हुआ, न होगा।'

नोट—*'रहा एक दिन अवधि कर'* इति। **'राम-वनवास और पुनरागमनकी तिथियोंपर विचार'—**

श्रीरामजीके वनगमन तथा वनवास और पुनरागमनकी तिथियोंका उल्लेख विशेषतः समयादर्शरामायणमें मिलता है। इसीके आधारपर प्रायः टीकाकारोंने तिथियोंपर विचार करके तिथियोंका निर्णय अपनी-अपनी मतिके अनुसार किया है। वस्तुतः इसका पूरा विवरण किसी प्राचीन रामायणमें नहीं है। कल्याण मासिक-पत्रके रामायणाङ्कमें तीन तिथिपत्रोंका उल्लेख है। वाल्मीकीयकी भूषणटीका, गणेशटीका आदिमें भी तिथिपर विचार पाये जाते हैं।—ये सब प्रायः वाल्मीकीयमें आये हुए चरितक्रमके अनुसार सब तिथिपत्र हैं।

गोस्वामीजीके रामचरितमानसका वालिवधतकका चरित-क्रम लगभग मिलता-जुलता कहा जा सकता है। इसके बाद सीताशोधतक भी बहुत अंश वाल्मीकिसे मिलता है। युद्धचरितमें मानसका अन्य बहुत-सी रामायणोंसे भेद है। मानसकविने न तो वनके आरम्भका ही दिन खोला है और न अन्तका। वाल्मीकिके अनुसार राज्य-रस-भङ्ग चैत्र शु० ९ को हुआ है। या अधिक-से-अधिक १० भी माना जाता है।

श्रीकरुणासिंधुजीने एक तिथिपत्र अग्निवेशके आधारपर तैयार किया है और एक तिथिपत्र श्रीमान् गौड़जीने अपनी गुटकाके दूसरे संस्करणमें '**श्रीरामचरित-पुष्पाञ्जलि**' नामसे दिया है जिसे वे साकेतबिहारीके अवतारके अनुसार रामचरितमानसके अनुकूल बताते हैं। यह कहाँसे लिया गया उस आधारका नाम उसमें नहीं है।

इन सबोंकी छान-बीन करनेपर कोई एक भी मानसचरितोंके अनुकूल पूरे शुद्ध नहीं जान पड़ते। इसका कुछ विचार यहाँ किया जाता है—करुणासिंधुजी हनुमान्‌जी आदिका दक्षिण दिशामें भेजा जाना मार्ग० शु० २ को, सम्पातीसे मिलना शु० ९ को और श्रीजनकनन्दिनीजीसे विदा होकर हनुमान्‌जीका इस पार लौट आना शु० १५ को निर्णय करते हैं। पर मानसमें समुद्र तटपर पहुँचकर वानर कह रहे हैं कि ***'बीती अवधि काज कछु नाहीं' 'उहाँ गए मारिहि कपिराई।'*** वाल्मीकिसे भी विवरमें ही एक मासका बीत जाना दिखाया जा चुका है। अतः यह तिथिपत्र भी उपयोगी नहीं है। गौड़जीवाली पुष्पाञ्जलिमें सुवेलपर उतरना माघ कृ० १० को लिखा है और मानसकवि भगवान्‌को मुख्य पार्षदोंसहित पूर्णिमाको शिखरपर दिखला रहे हैं—

'पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परमप्रताप तेजबल रासी॥' परम प्रताप तेज और बलकी राशि पूर्णचन्द्रमाका ही निश्चय करता है। दूसरे, पर्वतपर पहुँचना संध्या समय ही पाया जाता है; रावण उधर अखाड़ा देखने अपने लंका शिखरागारपर गया है। कृ० १० को चन्द्रमा उस समय कहाँ और कहाँ वह प्रताप उसका?

अन्य तिथिपत्र वाल्मीकीयके युद्ध-चरित्रानुसार हैं। वे मानससे मिल ही नहीं सकते। मेघनादद्वारा शक्ति वाल्मीकि, अध्यात्म आदि बहुत-सी रामायणोंमें है ही नहीं। जहाँ उन रामायणोंमें वानर-राक्षसोंका बड़ा भारी युद्ध कई दिनका है, वहाँ मानसमें समस्त महामुखिया प्रथम ही दिन श्रीहनुमान्-अंगद आदि योद्धाओंके द्वारा राम या रावणके सम्मुख फेंके हुए देखे जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दो मासके भीतर ही, कि जो अवधि वाल्मीकिमें रावणका श्रीसीताजीको दिया जाना पाया जाता है, रावणके सब पुत्र, पौत्र, भाई, सेना इत्यादि स्वर्गको पहुँचा दिये गये और मानसमें तो ***'मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना॥'*** है; अतः यहाँ रावणवंशका नाश इसीके भीतर कर दिया गया। उसके बाद राम-रावण युद्धमें रावणवध हुआ।

भूषणकारका मत है कि चैत्रमें १४ वर्ष पूर्ण हुए। गणेश टीकाकार कालिकापुराणका प्रमाण देते हैं और पं० राधाकृष्णमिश्रजी भी रामायणाङ्कमें आश्विन शु० ९ को रावणवध लिखते हैं। सब अपने अनुमानके अनुसार युद्धको घटाते-बढ़ाते हैं। वाल्मीकिजी वनवासका प्रारम्भ राम-जन्मदिन ही कहते हैं और लौटनेपर कहते हैं कि १४ वर्ष पूर्ण होनेपर पंचमीको रामजी भरद्वाजाश्रममें आये। कुछ लोगोंका कहना है कि यदि १४ वर्ष चैत्रमें ही उसी तिथिपर न पूरे होते तो अंतमें मासका नाम अवश्य देते क्योंकि यह चरित उनके समयका है। पं० राधिकाप्रसादमिश्र कार्तिकमें अर्थात् १३ वर्ष ६ मास ११ दिनमें १४ वर्षकी पूर्त्ति अनुमान करते हैं जैसे भारतमें पाण्डवोंके १४ वर्षकी गणना हुई थी। कोई वैशाखमें वनगमन और वैशाखहीमें लौटना लिखते हैं। इत्यादि।

'मानस-पीयूष' तिलक मानसका है। और मानसमें चार अवतारोंकी कथा है। जान-बूझकर जन्मतिथिके

सिवा और कोई तिथि मानसकारने नहीं दी। कारण स्पष्ट है कि जन्मतिथिके सिवा और चरितोंकी तिथियोंमें प्रत्येक अवतारमें भेद है। रही अवधिकी बात सो चौदह वर्षोंमें एक दिनका बाकी रह जाना सबमें सुनिश्चित है। तिथियोंके और दिनोंके हिसाबसे यह आवश्यक नहीं है कि वही दिन और तिथि पड़े जिस दिन और तिथिको प्रभुने अवधत्याग किया था। हाँ; (श्रीमान् गौड़जीका मत है कि) सौर मास वही पड़ना चाहिये। मानसके अनुसार एक ही तिथिपत्र बनाना इसलिये असम्भव है कि चारों अवतारोंकी सब लीलाएँ एक ही तिथिपर नहीं हुई (ऐसा जान पड़ता है)।

टिप्पणी—१ *'अति आरत पुरलोग'* इति। 'अति आर्त्त' होनेका भाव यह है कि—सब अवधिकी आशासे जी रहे हैं, यथा—*'बिषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥'* (२। ८६। ८) सो उस अवधिमें एक दिन बाकी रह गया पर श्रीरामजीके आनेकी कुछ खबर न मिली अतएव सब अत्यन्त व्याकुल हुए, सबके प्राण निकलने चाहते हैं। जैसे जल बिना मछली नहीं जीती रहती वैसे ही अवधवासी अवधिके आगे नहीं जी सकते। अवधि जल है, पुरवासी मीन हैं, यथा—*'अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥'* (२। ५७। २) [नोट—जब जल बहुत कम रह जाता है तब मछली व्याकुल होने लगती है, यथा—*'जल सकोच बिकल भईं मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥'* (४। १६। ८) यहाँ अवधिका यही एक दिन मात्र रह गया है अत: पुरवासी 'अति आर्त्त' हैं। पुन:, 'अति आर्त्त' से जनाया कि आर्त्त तो पहलेसे ही थे, यथा—*'चक्क चक्कि जिमि पुरनर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥'* (२। १८७। १) पर अब प्राणाधार अवधिका आजका ही दिन शेष रह गया और कोई समाचारतक न मिला, अत: अब 'अतिआर्त्त' हैं। अब इससे बढ़कर दु:ख नहीं हो सकता। पुन:, *'अति आरत'* कहकर श्रीकौसल्या अंबाके *'अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना'* का चरितार्थ दिखा रहे हैं। पुन:, 'अति' विशेषण देकर कवि सूचित करते हैं कि अब इस आर्त्तिके नाशका समय आ गया। यह सीमापर पहुँच चुकी है।]

२—*'जहँ तहँ सोचहिं'* इति। अर्थात् जो जहाँ है वह वहीं शोच करता है। तात्पर्य कि उठने-चलने-फिरनेकी शक्ति उनमें नहीं रह गयी (कि किसीसे जाकर पूछें), अवधिके बलसे शरीर चलता रहा, अब वह अवधि बीत गयी।—[शोच और अत्यन्त बेचैनी इससे है कि कोई कारण अवश्य पड़ गया है जिससे न आ सके। शृंगवेरपुरतक भी आये होते तो निषादराजने खबर दी होती। वहाँतक नहीं आये, तो अब एक दिनमें यहाँ आ नहीं सकते। क्योंकि पुरवासी समझते हैं कि वे पैदल ही आते होंगे। उनके साथ तो हनुमान्जी ऐसे पवनवेगी लोग थे, चाहे जिसे भेजकर समाचार दे देते; फिर भी कोई समाचार न मिला, कोई घटना तो नहीं हो गयी]

गौड़जी—*'जहँ तहँ नारि नर सोचहिं'* में *'सोचहिं'* सकर्मक क्रिया है। इसका कर्म है *'रहा एक दिन अवधि कर'*—अर्थात् जहाँ-तहाँ नर-नारि बारंबार सोचते हैं, हर एक यही सोचता है कि आज तो अवधिका अन्तिम दिन है, आज ही तो प्रभुको आ जाना चाहिये, आज ही तो चौदह बरस खतम होते हैं। लोग दिन गिनते रहे हैं। बारंबार वसिष्ठजीको तंग करते रहे हैं। पंचांगकी गणनापर बहसें होती रही हैं। गुरुजीने हिसाब लगाकर निश्चय कर रखा है। बात पक्की है कि आजका ही दिन आखिरी है। हर जगह जहाँ-तहाँ यही चर्चा है। फिर इस चर्चाके साथ लोग देख भी रहे हैं कि सभी अच्छे सगुन हो रहे हैं और वियोगान्तकी दृढ़ आशापर लोगोंके दिलोंसे खुशियाँ उमड़ पड़ती हैं। घर, द्वार, बाजार, हाट चारों ओर सारा शहर सुहावना-सा लग रहा है। अब वह उदासी नहीं है। यह सब प्रभुके आनेके ही लक्षण हैं। इस तरह पुरवासियोंमें आपसमें बातचीत सभी जगह आज चल रही है।

---

* पां०—जब अति आर्त्त पुरवासियोंको अत्यन्त आर्त्त करनेवाली अवधिका एक दिन रह गया तब स्त्री-पुरुष सभी जो जहाँ हैं वहीं सोचने-विचारने लगे कि अब रामवियोगका तन अत्यन्त कृश हो गया है, अब शीघ्र उसकी मुक्ति होना चाहती है, वह मिटने ही चाहता है। अत: सब प्रसन्न हैं कि अवधि पूरी हुई, रघुनाथजी आने ही चाहते हैं।—[वि० टी० ने भी यह भाव ग्रहण किया है। पर प्रसंग इस अर्थका साधक नहीं है।]

टिप्पणी—३ *'कृस तन राम बियोग'* इति। भाव कि शरीर ऐसा कृश है कि अब रामवियोगका दुःख नहीं सह सकता। छूटना ही चाहता है*। जब अवधवासी इस दशाको प्राप्त हुए तब उनको प्रसन्न करनेके लिये शकुन होने लगे जो आगे कवि लिखते हैं।

रा शं०—१ अवधि अंबु है। एक दिन रह गया मानो सब जल सूखकर एक दिनके सूखने भरका रह गया। इस जलके सूखनेपर मीनका मरण। वैसे ही इस एक दिनके व्यतीत होनेपर प्रियजनोंका मरण—इससे आर्त्त हैं। पुनः, जलके वियोगमें मरना यह अति आर्त्त है और किसी प्रकार मरना केवल आरत है। ऐसे ही पुरजनोंको और तरह मरना 'आरत' है श्रीरामविरहमें मरना 'अति आरत' है; यथा—*'माँगु माथु अबही देउँ तोही। रामबिरह जनि मारसि मोहीं॥'* २—*'जहँ तहँ'* का भाव कि मछली कम जलमें कहीं चल-फिर नहीं सकती, यथा—*'नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच।'*

गौड़जी—शुरूके दोनों दोहोंका अर्थ एक साथ होना चाहिये। दोनों सम्बद्ध हैं।

दोहा—सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥

शब्दार्थ—**आगवन** (आगमन)=अवाई, आना। यथा—*'मुनि आगवन सुना जब राजा। मिलन गयउ लेइ बिप्र समाजा॥'* **रम्य**=सुन्दर, रमणीय, मनोहर। **फेर**=दिशा, ओर, तरफ।

अर्थ—सब सुन्दर शकुन हो रहे हैं। सबका मन प्रसन्न है। नगर चारों ओर रमणीक हो गया है। मानो सब सगुन प्रभुके आगमनको जना रहे हैं। (आज प्रभु अवश्य आवेंगे। पुरवासियोंके मनमें ऐसा स्फुरण हो रहा है।)

टिप्पणी—१ (क) *'सगुन होहिं सुंदर सकल'* से सूचित किया कि बाहरके सब सगुन होते हैं अर्थात् सुभग अङ्ग फड़कते हैं, देखने और सुननेवाले शकुन होते हैं। यह कहकर भीतरके सगुन कहते हैं कि सबके मन प्रसन्न हैं। [कौसल्याजीके मन्दिरके अजिरमें तीन हंसके बच्चे बैठे हैं। ब्रह्माने ब्राह्मणरूपसे कौसल्याजीको कल्पवृक्षके फल दिये, चारों ओरसे हजारों ग्वालिनें शृङ्गार किये दधिभाजन सिरपर धरे आती हैं, दक्षिणसे तीन ब्राह्मण-बालक तिलक किये हुए रामचरित गाते आ रहे हैं इत्यादि सगुन महारामायणमें कहे हैं। (करु०)] (ख) *'मन प्रसन्न सब केर'* कथनका भाव कि प्रथम सबका मन जो शोचयुक्त था। (यथा—*'जहँ तहँ सोचहिं नारि नर·······'*) वह शकुन होनेसे प्रसन्न हो गया। मनका हर्ष कार्यसिद्धिका द्योतक शकुन है—*'होइहि काज मोहि हर्ष बिसेषी।'* (सु०। १। ३) में देखिये।

२ *'प्रभु आगवन जनाव जनु'* (अर्थात् सबको प्रभुके आगमनकी प्रतीति हो गयी, यथा—*'भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥'* (अ० ७। ६) [इससे यह भी जनाया कि सबके सुभग अङ्ग भी फड़क रहे हैं, यथा—*'राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥ पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥'*—(अ० ७ (५) देखिये। यहाँ अङ्गका फड़कना इससे न कहा कि आगे भरतजीके प्रसङ्गमें कहेंगे।]

३ *'नगर रम्य चहुँ फेर'* इति। भाव कि प्रथम नगर भयानक था, यथा—*'लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥'* (अ० ८३। ५) अब श्रीरामजीके आगमनसे (आगमन जानकर) पुर रमणीक हो गया, यथा—*'अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥'* (७। ३। ९) [पां०—चारों ओर सर्वत्र रमणीकता होनेका भाव कि जिसमें अति आर्त कृशतन पुरवासी जो जहाँ हैं वहीं देखकर जान लें कि यह शकुन है, प्रभुके आगमनका द्योतक है।]

दोहा—कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आएउ प्रभु श्री* अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥

---

* सिय—(का०, ना० प्र०)। श्री—(भा० दा, रा० गु० द्वि०)।

शब्दार्थ—**श्री**=श्रीजानकीजी। **जुत**=(युत, युक्त) साथ।

अर्थ—श्रीकौसल्यादि सब माताओंके मनमें ऐसा आनन्द हो रहा है कि अब कोई (ऐसा) कहना ही चाहता है कि 'प्रभु श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीता-लक्ष्मणसहित आ गये।'

टिप्पणी—१ (क) ***'कौसल्यादि मातु'*** का भाव कि कौसल्याजीका-सा आनन्द सब माताओंको हुआ। सब कौसल्याजीकी तरह श्रीरामजीमें प्रेम करती हैं। (ख) ***'मन अनंद अस होइ'*** कहनेका भाव कि सब शकुनोंसे मनका हर्षित होना (यह सगुन) अधिक श्रेष्ठ है, इसीसे सबके मनमें हर्ष होना लिखते हैं, यथा—***'सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर' 'कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ'*** और ***'जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार।'*** (श्रीभरतजी)

२ (क) ***'आएउ……'*** इति। यहाँ वात्सल्यरस है। कौसल्यादि माताएँ श्रीरामजीको 'प्रभु' नहीं कहतीं। श्रीरामजी माताओंके बालक हैं। ***'आएउ प्रभु'*** यह संदेश कहनेवालेके वचन हैं। वह ऐसा कहना ही चाहता है कि हमारे प्रभु श्रीसीता-लक्ष्मणजीसमेत आ गये। श्रीरामजी कहनेवालेके प्रभु हैं। [(ख) पां०—***'श्रीअनुज जुत'*** कहनेका भाव कि सब सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति-प्रसङ्ग सुन चुके हैं। सबकी अभिलाषा है कि ये साथ आवें।—(नोट-माता कौसल्याने हनुमान्जीद्वारा संदेशा भेजा था कि बिना लक्ष्मणके तुम्हारा यहाँ आना मुझे नहीं भावेगा, यथा—***'भेंट कहि कहिबो कह्यो यों कठिन मानस माय। लाल लोने लषन-रहित सुललित लागत नाय॥'***-(गी० लं० १४) अतः उनको लक्ष्मणसहित आगमन सूचित होना कहा। (ग) ***'आएउ'*** इस शब्दसे माताओंका शुद्धान्तःकरण और सच्चे प्रेमका परिचय मिलता है कि जो उनके मनमें आता था कि कोई कहना ही चाहता है कि ***'प्रभु आएउ'*** वही बात हुई। हनुमान्जीके मुखसे प्रथम यही ***'आएउ'*** शब्द निकला। यथा—***'आएउ कुसल देवमुनि त्राता।'*** देवमुनित्राता होनेसे सबके 'प्रभु' हैं ही। फिर भी आगे 'प्रभु' भी उन्होंने कहा है। यथा—***'सीता सहित अनुज प्रभु आवत।'*** (७। २। ५) जैसे यहाँ ***'प्रभु श्रीअनुज जुत'*** वैसे ही हनुमान्जीने तीनोंको कहा]।

☞इस प्रसङ्गपर मिलान कीजिये। गी० लं० २०—

'क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी।

कुसल क्षेम सियरामलषन कब ऐहैं, अंब! अवधरजधानी॥ १॥
ससिमुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी।
देबि दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी॥ २॥
सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मँड़रानी।
सुभ मंगल आनंद गगन धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी॥ ३॥
फरकन लगे सुअंग बिदिस दिसि मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी॥ ४॥

दो०—भरत नयन भुज दच्छिन फरकत* बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन† बिचार॥

अर्थ—श्रीभरतजीके दक्षिण नेत्र और दक्षिण भुजा बारंबार फड़कती हैं। (इसे) शकुन जानकर उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ। तब वे विचार करने लगे।

नोट—१ ***'भरत नयन भुज……'*** इति। (क) नेत्र और बाहु ही क्यों फड़के? इसलिये कि श्रीभरतजीके नेत्र और भुजाएँ, ये दोनों अङ्ग प्रभुकी सेवामें लगे हुए हैं, उनको अपने तनकी सुधबुध नहीं है। प्रभुकी सेवामें विघ्न पड़नेसे इनका मन शकुनकी ओर जायगा। (ख) 'दच्छिन'—दहिन नेत्र और बाहु फड़के, क्योंकि पुरुषके दक्षिण अङ्गोंका फड़कना शकुन है, वामांग फड़कना अपशकुन है। यथा—***'रामसीयतन सगुन***

* दच्छिन—(का०, रा० गु० द्वि०), दक्षिन (भा० दा०)। † करैं—(भा० दा०, रा० गु० द्वि०)।

जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥' (२। ७। ४) *'फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।'* (१। २३१ । ४) (ग) *'फरकत बारहिं बार'* इति। दक्षिण नेत्र और भुजाका फड़कना प्रिय-मिलन तथा अभीष्ट-सिद्धिका द्योतक है। यथा—*'पुलक सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥ भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥ भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥'* (२। ७। ५—७) श्रीभरतजीका श्रीरामसमान प्रिय दूसरा नहीं है, अतः इनके फड़कनेसे उनको श्रीरामजीके मिलनेका विश्वास होगा। श्री पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि श्रीभरतजी रामविरहमें इतने विकल हैं कि एक-दो बार फड़कनेसे उनको मालूम न हुआ, जब बारंबार फड़के तब सगुन जाना। बारंबार सगुन होनेसे 'अति' हर्ष हुआ।* (घ) सगुन देख हर्ष हुआ, इष्टमिलनकी आशा हुई, पर समाचार कोई अबतक नहीं मिला जिससे पूर्णाशा हो जाय। अतः विचार करने लगे। (वै०) (ङ) जैसे यहाँ बारंबार अङ्गोंके स्फुरण रूप शकुन हुए वैसे ही ये शकुन उसी प्रकार सत्य भी हुए। श्रीहनुमान्‌जीने बार-बार यह संदेशा कहा (रा० श० रा० शं० श०)।

२—ग्रन्थकार यहाँ सगुन-श्रवण-फल उत्तरोत्तर अधिक दिखाते हैं—पुरवासियोंको प्रभुका आगमन जनाते हैं। इनसे अधिक माताओंसे मानो कोई प्रभुका आगमन कहना ही चाहता है। और इनसे भी अधिक भरतजीके यहाँ तो हनुमान्‌जीने साक्षात् आकर श्रीरामजीका आगमन सुनाया ही। (पं० रा० कु०) प्रसन्नता भी उत्तरोत्तर एकसे दूसरेकी अधिक है। पुरके लोगोंका 'मन प्रसन्न'। कौसल्यादि माताओंका 'मन आनन्द०'। और भरतजीका *'मन हरष अति।'*

पां०—यहाँतक तीनों प्रकारके शकुन कहे गये—पुरवासियोंको प्रत्यक्ष, माताओंको मानसिक और भरतजीको अङ्ग फड़कनेका (अर्थात् कायिक वा चिह्नज)। प्रत्यक्ष जैसे कि काक-कोकिलादिकी वाणी और रूपका—(नगरकी रमणीयता एवं बाहरके सब मङ्गलसूचक शकुन जिनका वर्णन बा० ३०३ (१)—३०३ में बारातके पयान समय विशेष रूपसे हो चुका है)।

वै०—भरतजी और पुरजनोंमें विषादसहित हर्ष कहा और कौसल्यादि माताओंके मनमें आनन्द ही कहा, विषाद नहीं। इस भेदका भाव यह है कि कौसल्याजीको अलौकिक विवेक है अतएव इन्हें माया नहीं व्यापनेसे यथार्थ बोध हो रहा है कि सब आ रहे हैं, इसीसे विषाद नहीं है।

बं० पा०—पहले पुरजन, फिर माताओं और अन्तमें भरतजीको कहा क्योंकि यह आवरण-पूजाकी रीति है कि प्रधानकी पूजा अन्तमें होती है, उसी रीतिसे यहाँ लिखा।

नोट—३ नगरमें आनेपर प्रथम पुरवासियोंके दर्शन होते, महलमें पहुँचनेपर माताओंके और तत्पश्चात् नगरसे निकलकर बाहर जानेपर भरतजीके दर्शन होते हैं, अतः इस क्रमसे भी वर्णन हो सकता है। ☞पुनः, यह क्रम उत्तरोत्तर प्रेमके आधिक्यके अनुसार भी है। पुनः, यह भी हो सकता है कि वनवासकी सूचना सबसे प्रथम पुरनरनारिको मिली, तब कौसल्या, सुमित्रा आदि माताओंको और अन्तमें श्रीभरतजीको। सबसे पहले पुरनरनारि दुःखी हुए। तब माताएँ, तब भरत। यथा—

पुरनरनारि *'नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥*
मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ॥' (अ० ४६)
श्रीकौसल्याजी *'पिता दीन्ह मोहिं काननराजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥'*.........
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी॥' इत्यादि (२। ५३। (६)-५४ (२)
श्रीसुमित्राजी *'लषन कही सब कथा बिसेषी। गई सहमि सुनि बचन कठोरा।'* (२। ७३। ५-६)
श्रीभरतजी *'आदिहु ते सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥*

* वै०, वि० टी०—'दृगन्तमध्ये स्फुरणेऽर्थसंपत्सोत्कण्ठितः स्यात्स्फुरणे दृगादौ। स्पन्दो भुजस्येष्टसमागमाय स्पन्दः करस्य द्रविणासिहेतुः॥' इति वासन्तराजे। अर्थात् यदि आँखका अन्त और मध्यभाग फड़के तो बहुत धनकी प्राप्ति हो। यदि उसका आदि भाग नाकके समीपका फड़के तो उत्कट इच्छाका सूचक जानो। भुजाका फड़कना इष्ट पदार्थकी सिद्धि और हाथका फड़कना द्रव्यप्राप्तिका हेतु है।

भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु।' (२। १६०)

अत: उसी क्रमसे यहाँ दु:ख और हर्ष वर्णन किया गया।

नोट—४ पद्मपुराण पातालखण्डमें श्रीहनुमान्‌जीसे भेंट होनेपर यही दशा वर्णित की गयी है—'**भरतस्य भुजो नेत्रमवामं प्रास्फुरद् द्रुतम्। हृदयाच्च गतश्शोको हर्षास्त्रैः पूरिताननः॥**' (२। १४)

मा० हं०—स्वामीजीका उत्तरकाण्ड भरत-भेंटसे प्रारम्भ होता है। यह भरत-भेंट भक्ति भावका एक अप्रतिम उदाहरण है। हमको तो रामदर्शनके पूर्वकी भरतजीकी व्याकुलता, उस स्थितिमें उनकी और श्रीहनुमान्‌जीकी भेंट और आश्वासन तथा इसके बाद उनको रामदर्शन होना, श्रीगोसाईंजीके आत्मचरित्रमेंके ही भागसे भासित होते हैं। ऐसा कहनेका कारण यह है कि भक्तिविजयादि ग्रन्थोंमें उनके विषयमें इन्हीं भागोंके सदृश वर्णन मिलते हैं।

मा० म०—*'रहा एक दिन अवधि कर.........करन बिचार'* इति। स्त्री-पुरुष सोचवश अति आर्त्त हो गये अर्थात् उनके शरीर असमर्थ हो गये क्योंकि जिस अवधिकी आशावश सब प्राण रखे हुए हैं उसका केवल डेढ़ पहर रह गया है, इससे आशा रंचक रह गयी। निराशत्व ही सूचित होता है। असमर्थ थे, पर शकुन होने लगे। इन शकुनोंने सब पुरवासियोंको आशा दी और वे सावधान हो गये। माताएँ माधुर्यमें मग्न हैं पर कुछ ऐश्वर्य भी सूचित होता है। *'मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे'* इस वरदानके प्रभावसे कौसल्याजी श्रीरामजीका आगमन जान गयीं, उनको होनेवाली बात मालूम हो गयी; इसीसे *'आए प्रभु'* पद दिया है। पूर्व विराट्-दर्शन-समय *'प्रभु'* कहा है—*'अब जनि कबहूँ ब्यापइ प्रभु मोहि माया तोरि।'* श्रीभरतजी अति पराभक्तिके स्वरूप होकर स्थित हैं, उनको स्थूल स्वरूप विस्मरण हो गया है। इस दशामें सगुनोंने रसाभास किया। इनने उस स्वरूपको किंचित् भुलाकर स्थूलशरीरके व्यवहारमें ला दिया। जैसे सुतीक्ष्णजीको प्रभुने *'बहु भाँति जगावा'* वैसे ही सगुनोंने इनको जगाया।—*'भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार'*—सगुनका फल विचारनेसे हर्ष हुआ।

मयूख—यहाँतक 'प्रभु' शब्द दो बार आया है। *'प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर'* *'आए प्रभु श्री अनुज जुत०'।* इनमेंसे प्रथम 'प्रभु' पद देकर ऐश्वर्यका सामर्थ्य सूचित किया कि क्षणमात्रमें सबका दु:ख हरण करनेको समर्थ हैं और हरण करेंगे और दूसरे 'प्रभु' से जनाया कि माधुर्य-सुख पुनर्वार प्रबल होगा, यह सुख भी देनेको समर्थ हैं।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दु:ख भएउ अपारा॥ १॥
कारन कवन नाथ नहिं आएउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ॥ २॥

शब्दार्थ—'**अधार**' (आधार)=सहारा, अवलम्ब। आश्रय देनेवाला, प्राणोंकी रक्षा करनेवाला। **किधौं**=या तो, अथवा, न जाने।

अर्थ—अवधि आधारका एक दिन रह गया, वा प्राणोंका आधार १४ वर्षकी अवधिका एक दिन रह गया। यह समझते ही मनमें अपार दु:ख हुआ॥ १॥ नाथ किस कारणसे नहीं आये? ऐसा तो नहीं है कि मुझे कुटिल जानकर भुला दिया (अहह! बड़ा दु:ख है।)॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) *'अधार'* कहनेका भाव कि एक दिन भरतजीका जीवनके लिये आधार है, इसके आगे ये नहीं जी सकते, जैसा वे स्वयं आगे कहते हैं, यथा—*'बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥'* (ख) मनमें हर्ष हुआ और दु:ख भी, यथा—*'जानि सगुन मन हरष'* और *'समुझत मन दुख भएउ.......।'* यहाँ 'पर्याय' अलंकार है—'**एकस्मिन् यद्यनेकं वा पर्यायः सोऽपि सम्मतः**' एक आधारके लिये अनेक आधेय होना भी पर्याय है। मन एक आधार है, उसके दो आधेय हैं—हर्ष और दु:ख। (ग) आगे रामविरहदु:खको समुद्र कहते हैं, यथा—*'राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।'* समुद्र अपार होता है। इसीसे यहाँ दु:खको *'अपार'* कहा।—(पां०—अपारका भाव कि जबतक अवधि थी तबतक उसका पार

था और जब अवधि व्यतीत होनेको हुई तब उसका पार न रह गया, वह अपार हो गया)। (घ)—भरतजी दुःखसे विचार करते हैं इसीसे प्रथम जब मनमें हर्ष हुआ तब विचार करना न लिखा और जब मनमें दुःख हुआ तब विचार करना लिखते हैं।

रा० शं०—*'दुःख भएउ अपारा'* इति। यह कि यदि श्रीरामजी न आये तो जो मैं कौसल्या अम्बाके सामने कसम खाकर सच्चा बना था तो झूठा हो जाऊँगा, पिताने जो कैकेयीसे मेरी बड़ाई की थी वह भी झूठी हो जायगी, व्यर्थमें पिताको झूठका कलंक लगेगा और पुरवासी जो मुझे सच्चा शुद्ध रामस्नेही जानते थे—(*कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहि यह बात अलीहा*)—वे सब भी झूठे पड़ जायँगे, लषनलाल और निषादके संदेह सब सत्य हो जायँगे। श्रीरघुनाथजीके चित्रकूटमें मुझसे कहे हुए वचनोंसे जो हर्ष मुझे प्राप्त हुआ था वह सब घोर दुःखके स्वरूपमें बदल जायगा। मैं १४ वर्षके वियोगका दुःख अनुभव करके घबड़ाता रहा हूँ कि इसी दुःखमें मुझे अमित दुःख था, अब अवधि व्यतीत होनेपर उसकी क्या संख्या होगी।

मा० म०—१ *'समुझत मन दुःख भएउ·········'*। भाव कि जीता रहा तो मेरा वचन और स्नेह असत्य हो जायगा जो मैंने कहा था कि *'सेवउँ अवध अवधि भरि जाई', 'अवधि पारु पावउँ जेहि सेई',* और पिताकी परिपाटी छूट जायेगी कि *'नाहि त मोर मरन परिनामा।'* और यदि मर गया और तब रामचन्द्रजी आये तो पश्चात्ताप होगा।

टिप्पणी—२ (क) तीसरे और चौथे चरणोंका अन्वय आगेकी चौपाईके *'अहह'* शब्दतक है। बिसराये जानेका बड़ा दुःख हुआ। उसीपर खेद प्रकट करते हुए *'अहह'* कहा है। जब कुछ कारण मनमें न निश्चित कर सके तब विचार करते हैं *'जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ।'* तात्पर्य यह कि और कारण तो कुछ नहीं है, यही कारण है।—[पां०—*'किधौं'* पद संकल्प-विकल्पवाचक है। निश्चय इससे नहीं कहते कि शकुन सहायक है] (ख)—पूर्व जो लिखा था कि *'जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार'* वह विचार करना अब लिखते हैं—*'कारन कवन·········।'*

मा० म०—*'कारन कवन·········'* का भाव कि लक्ष्मणजीको शक्ति लगी थी, वे मर तो नहीं गये, चाहे इसी संकोचसे न आते हों—*'जैहौं अवध कवन मुँह लाई।'* अथवा अभी रावण मरा नहीं, वा मैंने हनुमान्‌जीको बाण मारा था जिससे कार्यमें विघ्न होनेकी सम्भावना थी, इस दोषको विचारकर न आये। वा विभीषण या सुग्रीवने रोक रखा। वा पिताके बिना अयोध्याको दुःखका भण्डार जानकर न आये। वा स्त्रीहरणकी लज्जासे न आये इत्यादि। इन कारणोंमेंसे किस कारणसे न आये। यह वचन *'जैहौं अवध कवन मुँह लाई'* का उत्तर है। *'जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायेउ'* यह *'कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी'* का उत्तर है।

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी॥ ३॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥ ४॥

शब्दार्थ—अहह!—'अहहेत्यद्भुते खेदे इति विश्वः।' इस शब्दका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करनेके लिये होता है—*'अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥'*

अर्थ—अहह! लक्ष्मणजी धन्य हैं, बड़भागी हैं, श्रीरामचरणकमलके अनुरागी हैं। (तात्पर्य कि बड़े सुकृतसे, बड़े भाग्यसे श्रीरामचरणकमलमें अनुराग होता है। श्रीरामचरणानुराग होना ही सुकृतका फल है और यही बड़ा भाग्य है)। प्रभुने मुझे कपटी और कुटिल पहिचान लिया। (जाना) इसीसे स्वामीने (मुझे) साथमें न लिया॥ ३-४॥

टिप्पणी—१ (क) *'अहह'* शब्दका अन्वय पिछली चौपाईके साथ है। इस चरणके साथ भी यदि लें तो *'लालन जोग लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥'*·········*मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥ ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥'* (२। २००) तथा *'मोर जनम रघुबर बन लागी॥'* (२। १८२। ८) इन विचारोंसे 'अहह' शब्द उनके मुखसे निकलना कह सकते हैं। श्रीलक्ष्मणजीको धन्य कहनेके साथ ही ये विचार भी उठ आये होंगे। लक्ष्मण छोटे हैं यह सोचकर

'अहह' कहा। (रा० च० मिश्र)। अथवा 'अहह' का अर्थ यहाँ 'अहा', 'अहो', 'अहाहा' कर लें जो प्रसन्नता और प्रशंसा सूचित करनेके लिये प्रयुक्त होता है। अ० रा० में 'अहो' शब्द है। और कुछ टीकाकारोंने ऐसा अर्थ लिया भी है। (ख) लक्ष्मणजीको धन्य और बड़भागी कहनेका भाव कि लक्ष्मणजी सुकृती हैं और रामचरणानुरागी हैं इसीसे प्रभुने उन्हें सङ्ग लिया, मुझे कपटी, कुटिल चीन्हकर सङ्गमें न लिया। [पुनः धन्य कहनेका भाव कि उन्होंने श्रीरामजीके लिये अपने प्राणतक दे दिये। मुझको चरणपीठकी सेवा मिली और उनको साक्षात् चरणकी; अतः वे बड़भागी हैं। पूर्व भी श्रीभरतजीके विचार श्रीलक्ष्मणजीके विषयमें ऐसे ही थे (यथा—*'जीवन लाहु लषन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा॥'* (२। १८२) और वे अन्ततक वैसे ही बने रहे, यह बात आगेके *'रामपदारबिंद अनुरागी'* से जनाया है। (मा० म०)] (ख) *'पदारबिंद अनुरागी'* से सूचित किया कि श्रीरामचरण कमल हैं और लक्ष्मणजीका मन भ्रमर है जो उस कमलमें अनुराग किये हुए हैं, यथा—*'पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह माहीं।'* *'बड़भागी'* पर विशेष बा० २११ छंद, अ० १० (२१) और कि० २३ (५—७) में देखिये।

नोट— १ पद्म पु० पाताल खण्डमें भी ऐसे ही वचन हैं, यथा—'**धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूः स्वपतिप्रिया। यस्यास्तनूजो रामस्य चरणौ सेवतेऽन्वहम्॥**' (१। ४१) अर्थात् पतिको प्रिय सुमित्रा अम्बाजी धन्य हैं जिन्होंने वीर लक्ष्मणको उत्पन्न किया जो अहर्निश रामचरणसेवा कर रहे हैं। पुनः यथा—'**अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः। राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः॥**' अर्थात् अहा! महात्मा लक्ष्मणका जन्म अत्यन्त सफल है जो भगवान् रामके वनमें रहते समय भी सदा प्रसन्न मनसे उन्हींका अनुसरण करते हैं। (अ० रा० २। ८। ३२)

नोट—२ *'कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा।'*......... 'इति। (क) प्रथम श्रीभरतजीने अपनेको कुटिल कहा। यथा—*'जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ।'* अब उसी वचनको पुष्ट कर रहे हैं—*'कपटी कुटिल'*....।' (पं० रा० कु०)। (ख) *'कपटी कुटिल'* वह है जो किसीकी ओटसे बुराई करे। मैंने अपनी जननीकी ओटसे राज्य लिया। स्वयं तो ननिहाल चला गया और मातासे कुटिलता करायी। कुटिलमात्र वह कहा जाता है जो खुल्लमखुल्ला किसीको सतावे और मैंने दूसरेकी आड़से प्रभुको वनवास दिया। अतः मैं *'कपटी कुटिल'* हूँ। (पां०)। अथवा जिसके पेटमें कुछ हो और मुखमें कुछ हो वह 'कपटी' है और जो मन-वचन-कर्म तीनोंसे टेढ़ा हो वह कुटिल कहलाता है। (मा० म०) पाँड़ेजीका मत है कि 'यहाँ' 'प्रभु' का विशेष प्रयोजन श्रीरघुनाथजीके लिये नहीं पाया जाता। विशेष भाव यह जान पड़ता है कि 'प्रभु' को 'कुटिल' के साथ लेकर यह अर्थ कर लें कि मुझे 'कपटी और कुटिलोंका प्रभु' जाना। (ग) *'चीन्हा'* इति। भाव कि कपट गुप्त रहता है, उसे लोग जल्दी जान नहीं पाते। पर वे 'प्रभु' हैं, इससे उन्होंने मेरा कपट जान लिया। श्रीरामजीको कपट-छल नहीं भाता, यथा—*'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।'* और मुझे उन्होंने जान लिया कि मैं कपटी कुटिल हूँ अतः मैं उन्हें कैसे भाऊँ? इसीका फल आगे कहते हैं। (घ) बैजनाथजी लिखते हैं कि *'कपटी.........चीन्हा'* का भाव यह है कि उचित था कि मैं भी तापस-साज सजकर साथ हो लेता सो न करके उलटे सेना-परिवार सब साज साथ ले जाकर उनकी स्वतन्त्रतामें बाधक हुआ, तब सङ्ग ले चलनेको कहा। इसीसे कपटी समझा कि मन तो राजसी ठाठमें है और ऊपरसे बातें बनाते हैं।

३ *'ताते नाथ संग'*.......... ' इति। (क) यहाँके 'नाथ' शब्दमें *'नाथृ याचने'* धातुका भाव है। यह 'याचना' अर्थमें यहाँ प्रयुक्त हुआ है। भाव कि मैंने साथ चलनेकी याचना (प्रार्थना) की थी; यथा—*'सानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहि सनाथ। नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥'* (२। २६८) तो भी मुझे साथ न लिया। (पं० रामकुमारजी)।

पाण्डेजीका मत है कि लक्ष्मणजीका स्मरण इससे किया कि 'यदि रघुनाथजी मुझे भूल गये होंगे तो वे समझाकर ले आयेंगे। फिर मनमें सोचते हैं कि उनको रामपदारविन्दकी सेवाका पूरा भाग मिल गया (मैं बड़ा था, मेरा प्रथम हक सेवाका था सो उससे वञ्चित रखा गया)। वे रामपदारविन्दानुरागी

हैं अर्थात् उनको अपने देश, कोश, माता, भाई, बन्धुवर्ग, स्त्री इत्यादि किसीमें अनुराग नहीं है; इसलिये रघुनाथजीकी सेवारूपी पदार्थ वे अकेले लिये बैठे हैं। वे उसको बाँट देनेके लिये प्रभुको यहाँ क्यों लाने लगे। इस प्रकार सोचकर जब भरतजी उधर-(लक्ष्मणजीकी ओर-) से निराश हुए तब रघुनाथजीकी शरण गये जैसा आगे कहते हैं; पर वहाँ भी अपना निर्वाह न देखा तब अपनी करनीपर विचारकर कहने लगे कि *'कपटी……।'*

मा० शं०—सबको त्यागकर ये साथ गये, गया तो मैं भी पर सबको साथ लेकर, मैं सब सहित लौट आया, वे साथ रख लिये गये।

जौं करनी समुझै* प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प सत कोरी॥ ५॥

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥ ६॥

शब्दार्थ—**समझना**=विचारना, ध्यानमें लाना। **निस्तार**=छुटकारा, उद्धार, निर्वाह।

अर्थ—यदि प्रभु मेरी करनी (अवगुण, कर्तव्य, अपकारके कर्म) समझें तो सौ करोड़ (असंख्यों) कल्पोंतक मेरा निर्वाह नहीं हो सकता॥ ५॥ प्रभु सेवकका अवगुण कभी भी नहीं मानते। वे दीनबन्धु हैं, उनका अत्यन्त कोमल स्वभाव है। (भाव कि कोमल स्वभाववाले दीनोंपर दया करते ही हैं, यथा—*'कोमलचित दीनन्ह पर दाया।'*) ॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'जौं करनी……'* इति। सब भक्त अपने विषयमें ऐसा ही कहते हैं, यह उनका कार्पण्य है। यथा—*'जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥'* (१। १२। ५) अथवा 'मेरी करनी' यह है कि रामदूतको मैंने बाण मारा, यदि हनुमान्‌जी संजीवन लेकर समयपर न पहुँचते तो लक्ष्मणजी न जीवित होते, लक्ष्मण बिना श्रीरामजी न जीवित रहते और श्रीरामजीके बिना श्रीसीताजी और सब माताएँ तथा सब अवधवासी न जीते रहते। यदि यह मेरी करनी श्रीरामजी समझें तो सौ करोड़ कल्पोंतक मेरा निस्तार नहीं हो सकता। अर्थात् इतने कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहने योग्य कर्म मैंने किये हैं।—[जब अपनी करनीसे अपना निस्तार न देखा तब प्रभुके दीनबंधुत्व और अति मृदुल स्वभावकी शरण गये और उसपर दृढ़ विश्वास किया। (पां०)]।

टिप्पणी—२ [*'जन अवगुन……।'* इति। भाव कि मेरे सब कर्म निन्दनीय हैं क्योंकि मैंने एक तो पिताकी आज्ञा न मानी, दूसरे मातासे मातृसम्बन्ध त्यागा, तीसरे मेरे कारण पिता ननिहालके ऋणी रह गये इत्यादि अगणित अवगुण मुझमें हैं तब मैं भक्त तो हो ही नहीं सकता। पर मैं बुरा भी हूँ तो भी हूँ उन्हींका जन और वे जनका अवगुण कभी भी नहीं मानते, क्योंकि वे *'दीनबंधु……'* हैं। (मा० म०)।] (ख) *'दीनबंधु……'* भाव कि प्रभु दीनबन्धु हैं और मैं दीन हूँ, मुझपर अवश्य कृपा करेंगे; क्योंकि दीन कृपाका पात्र है, यथा—*'नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥'* (३। ८। ४) पुनः, *'दीनबंधु'* और *'मृदुल सुभाऊ'* कहकर सूचित किया कि वे जनके अवगुण नहीं मानते वरन् जनकी सहायता करते हैं और कोमल स्वभाव हैं अतः जनपर कभी क्रोध भी नहीं करते। प्रथम जो कहा था कि *'कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा'* उसीपर यहाँ कहते हैं कि *'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।'* अर्थात् वे ऐसा कभी न समझेंगे। पूर्व जो भरतजीने कहा था कि *'देखि दोष कबहुँ न उर आने।'* (२। २९९। ४) उसीको वे यहाँ स्मरण कर रहे हैं।†

रा० प्र०—विरहकी ऐसी लहर उठनेपर भी उपासना-भाव न छोड़ा।

---

* समुझहिं—(पाठान्तर)।

† शिला—'कोरी=नयी। मेरी करनी समझें तो मेरा निस्तार नहीं; क्योंकि मेरी करनी सौ कल्पतक भी नवीन ही बनी है। भाव कि वैर काल पाकर मिट जाता है पर मेरी करनी न मिटेगी। सदा नयी ही बनी रहेगी।'

मोरे जिय* भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥ ७॥
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥ ८॥

अर्थ—मेरे हृदयमें यही भरोसा दृढ़ (पक्का, मजबूत) है। श्रीरामजी (अवश्य) मिलेंगे; क्योंकि मङ्गल सगुन हो रहे हैं॥ ७॥ अवधि बीत जानेपर यदि प्राण रह गये तो मेरे समान संसारमें कौन अधम होगा॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'सोई'* अर्थात् जो ऊपर कह आये कि वे जनका अवगुण नहीं मानते यही भरोसा दृढ़ है और जो पूर्व सोचा था कि मेरे अवगुण देखकर मुझे भुला दिया वह ठीक (दृढ़) नहीं है। (ख)—एक भरोसा तो ऊपर कहा ही उसपर भी दूसरी मजबूती यह है कि शुभ शकुन हो रहे हैं। २—(क) *'रहहिं जौं प्राना'* इति। भाव कि अवधि बीतनेपर प्राण रहेंगे नहीं, कदाचित् रहे तो मैं बड़ा अधम हूँ। प्रथम तो श्रीरामजीके आगमनका दृढ़ निश्चय हुआ, पर फिर विरहके योगसे पुनः संदेह हो गया; इसीसे *'बीते अवधि·······'* कहा। [*'दृढ़ भरोस'* कहकर भी *'बीते अवधि·······'* वचनका कहना सूचित करता है कि वियोग-विरह इतना प्रबल है कि वह विश्वासको जमने नहीं देता, मनको फिर तुरंत अपनी ओर खींच लेता है। (पां०) पुनः संदिग्ध वचनका कारण और भी यह है कि पूर्व कई बार इसने धोखा दिया है। यथा—*'सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा।·······संकर राखि रहेउँ एहि घाये॥'* (२। २६२। ५) प्राण निकल जाने चाहिये थे पर न निकले। फिर चित्रकूट पहुँचनेपर *'अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबइ सहाई॥'* (२। २६२। ७) प्राण न निकले। अतः क्या जाने अब भी न निकलें।]—सन्देह क्यों हुआ? इससे हुआ कि अवधिमेंका एक यही दिन रह गया है। इसीसे उपक्रम और उपसंहार दोनोंमें अवधिको ही समझकर दुःख होना लिखा। यथा—*'रहा एक दिन अवधि अधारा··········।'* और *'बीते अवधि रहहिं जौं प्राना·············।'* [*'बीते अवधि जाउँ जौं जियत न पावउँ बीर।'* (६। ११५) इस वाक्यका यहाँ उत्तर है अर्थात् जो रघुनाथजी लङ्कामें सोच रहे थे वही यहाँ भरतजी सोच रहे हैं कि यदि मेरे प्राण रह गये तो मेरी गिनती अधम-शिरोमणिमें होगी, अतः प्राण रखना उचित नहीं। (मा० म०)] (ख)—*'अधम कवन जग·······'* इति। भाव कि संसारमें अधम बहुत हैं पर मेरे समान नहीं हैं। अपने स्वामीके बिना जीना बड़ी अधमता है। दूसरी अधमता यह है कि मेरी प्रतिज्ञा है कि अवधि बीतनेपर प्राण त्याग दूँगा। यथा—*'तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जौं रघुबीर न ऐहौ। तौ प्रभुचरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहिं न पैहौ॥'* (गी० अ०) उसपर भी मैं जीवित रह जाऊँ। (पां०)। पुनः भाव कि अधम तो अभी हूँ पर अवधि बीतनेपर तो मेरी समताका अधम कोई नहीं होगा। (रा० शं०)।

वीर—यहाँ रामचन्द्रजीके आगमनकी सूचना न मिलनेसे विरहजन्य भरतजीके हृदयमें शंका, दैन्य, चिन्ता, मोह, विषाद, त्रास, ग्लानि, वितर्क, धृति, मति आदि संचारी भावोंका साथ ही उदय होना भावोंकी माला है।

दो०—रामबिरहसागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥ १ (रा)॥

अर्थ—श्रीरामजीके विरह-समुद्रमें श्रीभरतजीका मन डूब रहा है† उसी समय पवनसुत हनुमान्‌जी विप्ररूप धरकर (ऐसे) आ गये मानो नाव आ गयी॥ १ (रा)॥

टिप्पणी—१ (क) विरह-समुद्रमें मन डूबता है क्योंकि विरह-समुद्र अपार है। यथा—*'समुझत मन दुख भयउ अपारा।'* जब पार (तट) न मिला तब डूबने लगा। (ख)—विप्ररूप धारण करनेके भाव—मङ्गल समयमें मङ्गलरूप धारण किया।—(विशेष भाव लं० १२० (१) में देखिये।) [बाबा हरिदासजीके मतसे

---

* जिअ—(भा० दा०, रा० गु० द्वि०) जिय-(का०)।

† आ० रा० १२। ६६—७५ में लिखा है कि भरतजी अग्निप्रवेश करनेको तैयार थे, सूर्यास्तकी राह देख रहे थे कि इतनेमें हनुमान्‌जी आ गये।—'नन्दिग्रामेऽपि भरतो पूर्णे वर्षे चतुर्दशे॥ ६५॥ नागते राघवे वह्नौ सन्नद्धोऽभूत्प्रवेशितुम्····॥ ६६॥ ·······सोऽहमग्निं विशाम्यद्य रवावस्ताचलं गते॥ ६८॥·······भरतं वेष्टयामासुः खेदाद्विह्वलमानसाः·······चितां' इत्यादि।

विप्ररूप धारण करनेके कारण ये हैं कि—(क) भरतजीको सगुन हो रहे हैं; वानररूपसे उन सगुनोंका अभाव होगा। (ख) श्रीरामजीके मिलानेमें ब्राह्मण ही अधिकारी हैं। (ग) श्रीभरतजी रामकथा पूछेंगे और कथा सुनानेके अधिकारी द्विज ही हैं, नहीं तो सजीवन लाते समय तो भेंट हुई ही थी, रूप बदलनेका क्या प्रयोजन? और पांडेजी लिखते हैं कि विप्र पितृरूप प्राणका रक्षक है और यह समय भरतप्राणकी रक्षाका है।'—इसी प्रकार मा० शं० में भी अनेक कारण लिखे हैं पर प्रसंगानुकूल तो केवल यही है कि श्रीरामजीकी आज्ञासे विप्ररूप धरकर गये]।

टिप्पणी—२ विरहसमुद्रमें डूबते हैं इसीसे 'पोत' कहा। पवनके सम्बन्धसे नाव जल्दी चलती है। ये पवनपुत्र हैं पवनवेगसे आये। यथा—'**ततोऽयोध्यां ययौ वेगान्मारुतिः स विहायसा**'—(आ० रा० १२। ६५) (विशेष लं० १२० (३)में देखिये)। जैसे जानकीजीको विरहसमुद्रमें डूबनेसे बचाया था, यथा—'***बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भएउ तात मो कहुँ जलजाना॥***' (५। १४। २) वैसे ही यहाँ भरतजीको बचाया।* [☞इस द्विरुक्तिसे सूचित किया कि जबतक जीव रामविरह-सागरमें नहीं पड़ेगा और डूबनेके भयसे आर्त वा दीन न बनेगा, तबतक उसे हनुमान्‌रूपी पोतका सहारा न मिलेगा। श्रीहनुमान्‌जीके आश्रय बिना रामविरह-सागर पार होना भी असम्भव है। (प० प० प्र०)]

नोट—'***बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गएउ***' का सम्बन्ध लं० १२० (१) (३) '***धरि बटु रूप अवधपुर जाई***' और '***तुरत पवनसुत गवनत भएऊ***' से है। पूर्व प्रसंग यहाँ फिर उठाया। यहाँ '***रामबिरह सागर***' में पूर्णरूपसे एकरूपताका वर्णन होनेसे 'समअभेदरूपक' है। '***आइ गएउ जनु पोत***' में उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है। पवन प्राणका रक्षक है। यहाँ भरतके प्राणकी रक्षा की है अतः '***पवनसुत***' नाम दिया। पुनः पद्मपु० पा० २ में श्रीरामजीने इनको अवध भेजते समय वायुनन्दन सम्बोधन किया है, उसके अनुसार यहाँ पहुँचनेपर पवनसुत नाम दिया गया।

गौड़जी—श्रीभरतजीका मन विरहसागरमें तो चौदह वर्षसे मग्नप्राय है। अवधि बीतते ही दर्शनोंकी आशा तख्तेका सहारा था जिसके बलपर अबतक डूब नहीं गया। वह आशाका तख्ता भी हाथसे छूट ही रहा था कि उनको बचानेके लिये नौकास्वरूप विप्ररूप पवनपुत्र देख पड़े। आशाका तख्ता हाथोंसे छूटते-छूटते रह गया।

वि० त्रि०—माता कौसल्याने कहा था कि '***अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥ अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई॥***' (२। ५७) वह उपाय सरकारने कर दिया। अवधिके पूरा होनेके एक दिन पहले ही हनुमान्‌जीको भरतलालके पास भेज दिया। जिस समय भरतजी विरहसागरमें मग्न हो रहे थे, उसी समय हनुमान्‌जी विप्ररूपमें जहाजकी भाँति पहुँच गये। बड़े असमंजसका समय था। सर्वाधिक प्रेम भरतजीका था, सो डूब रहे थे। इनके बाद सब डूबते, सो जहाज आ गया, अब सब बच जायँगे।

रा० प्र०—'***रामबिरहसागर*******' यह उपसंहार उस उपक्रमका है जो अ० १५४ में लिखा गया—'***रामबियोग पयोधि अपारू॥ करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥***' इत्यादि।

---

* मा० म०—विरहसमुद्र और उसमें डूबनेवाला मन दोनों ही रूपरहित हैं, इसलिये वहाँ बिना रूपकी समाचाररूपी नौका लेकर मल्लाहस्वरूप हनुमान्‌जी पहुँच गये। हनुमान्‌जीको रूपवान् पोतसे रूपक देना प्रकरण-विरुद्ध होगा, क्योंकि बिना रूपके समुद्रमें रूपवान् पोत नहीं चल सकता।

मयूख—जब मन विरहमें डूब जाता है तब अचेत हो जाते हैं और जब उसके ऊपर आता है तब सावधान होते हैं और नाम जपते हैं। आठ चरणोंमें मध्यगति दिखायी अर्थात् न डूबे हैं और न ऊपर हैं फिर दोहेके दूसरे चरणमें पहले मग्न होना कहकर चौथेमें गुणानुवादरूपी नाम मिलनेसे अवलम्ब हो गया।

वै०—समुद्रपार करनेकी गति नावमें नहीं है। अपने रूपसे आते तो जहाज-समान होते; क्योंकि उनको पहचानते थे। विप्ररूपसे किंचित् सहारा हुआ कि अनजाना ब्राह्मण है, कुछ शुभ समाचार देगा।

दोहा—बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात॥ १ (म)॥

अर्थ—(सिरपर) जटाओंका मुकुट, शरीर दुबला, राम-राम-रघुपति जपते नयन-कमलसे जल (प्रेमाश्रुप्रवाह) गिराते, कुशासनपर बैठे (दूरसे ही) देखकर—*॥ १ (म)॥

टिप्पणी—१ (क) *'बैठे देखि'* से जनाया कि रात-दिन बैठे-बैठे शोच करते रहते हैं। यथा—*'जासु बिरह सोचहु दिन राती।'* (ख) कुशासनपर बैठनेका भाव कि श्रीरामजी कुशासनपर बैठते हैं, लेटते हैं, इससे ये भी वैसा ही करते हैं। वे जटा-मुकुट धारण किये हैं अतः ये भी जटा धारण किये हैं। रामवियोगमें शरीर सूख गया। यथा—*'कृस तन राम बियोग', कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥'* (७। ५। १); अतः कृशगात हैं। (ग) *'राम राम रघुपति जपत.........'* इति। रामनाम शोच-समुद्रको सोख लेता है; यथा—*'दंभहुँ कलि नाम कुंभज सोचसागर सोषु।'* (वि० १५९) अतः 'राम-राम' जपते हैं। [रा० शं०—नामके जपसे कुसंकट मिट जाते हैं—*'जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥'* (१। २२। ५) इनका कुसंकट भी मिटा। श्रीहनुमान्‌जी तुरंत आ गये। इसीसे नामजपके बाद तुरंत हनुमान्‌जीका आगमन कहा।]—और 'रघुपति' जपनेका भाव कि आप रघुवंशके रक्षक हैं, आपके बिना सब रघुवंश मरने ही चाहता है, मरणप्राय है रक्षा कीजिये। *पा रक्षणे।*

☞रामजीके बिना जो दशा श्रीजानकीजीकी वर्णन कर आये हैं वही दशा भरतजीकी वर्णन करते हैं। मिलान यथा—

बैठेहि बीति जात निसि जामा	१	*बैठे देखि कुसासन*
कृसतन सीस जटा यक बेनी	२	*जटा मुकुट कृस गात*
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी	३	*राम राम रघुपति जपत*
नयन स्त्रवहि जल निज हित लागी	४	*स्त्रवत नयन जलजात*

☞श्रीभरतजीकी दशा श्रीसीताजीकी दशाके समान लिखनेका भाव यह है कि श्रीरामजीमें श्रीसीताजीका तथा श्रीभरतजीका समान पातिव्रत्य धर्म है। यथा—**'खड्गधाराव्रतीप्रथमरेखाप्रगट सुद्धमतिजुवति-पतिप्रेमपागी॥ जयति निरुपाधि भक्तिभाव जंत्रित हृदय बंधुहित चित्र कूटाद्रिचारी।.........'** (वि० ३९) इसीसे दोनोंमें समान विरह है।

'स्त्रवत नयन जलजात' में परिणाम अलंकार है यथा—**'परिणामः क्रियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना। प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा॥'** इति चन्द्रालोके।, *'बरननीय उपमान ह्वै जबै करे कुछ काम। गिरिधर दास बखानिए तासु नाम परिणाम॥'* यहाँ नेत्र अपने उपमान कमलके द्वारा जल स्त्रवते हैं जो क्रिया वस्तुतः नेत्रद्वारा होनी चाहिये।

नोट—यहाँ *'बैठे देखि'* अपूर्ण क्रिया दी, आगेकी चौपाईमें इसकी क्रिया देंगे। *'देखि'* कहकर कहने लगे कि कैसा देखा तब आगे *'देखत हनूमान अति हरषेउ'* कहकर जनाया कि वह दशा देखते ही हर्ष हुआ, लिखने वा कहनेवाला एक ही है, अतः एक साथ न कह सकते थे।

पं० रामचरण मिश्रजीका मत है कि *'बैठे देखि'* यह दूरसे देखना है और *'देखत हनूमान'* यह निकटसे देखना कहा गया है। विशेष भाव आगेकी चौपाईमें देखिये।

रा० प्र०—१ *'बैठे देखि कुसासन.........'* का उपक्रम *'नंदिगाँव करि परन कुटीरा।.........जटा जूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साथरी सँवारी॥'* (अ० ३२४) और *'राम राम रघुपति जपत.........'* का उपक्रम *'पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥'* (२। ३२६। १) है और २—*'राम राम रघुपति'* अर्थात् रघुपतिका *'राम'* यह नाम निरन्तर जपते हैं।

* यथा पद्मपु० पा०—'गर्तशायी ब्रह्मचारी जटावल्कलसंयुतः। कृशाङ्गयष्टिर्दुःखार्तः कुर्वन् रामकथां मुहुः॥' (१। ३०)

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥ १॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥ २॥

अर्थ—(फिर पास आते हुए) देखते ही हनुमान्‌जी अत्यन्त हर्षित हुए। उनके शरीरके रोएँ खड़े हो गये, नेत्रोंने जलकी वर्षा की अर्थात् नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह चले॥ १॥ मनमें बहुत तरहसे सुख मानकर कानोंके लिये अमृत-समान वाणी बोले॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) प्रथम *'देखि'* क्रिया कही, यथा—*'बैठे देखि कुसासन'* अब *'देखत'* क्रिया कहते हैं—*'देखत हनूमान अति हरषेउ'* इसका तात्पर्य यह है कि *'बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात'* यह तनकी दशा है, पहले इस तनकी दशाको देखकर हर्ष हुआ; और, *'राम-राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात'* यह प्रेमकी दशा है, प्रेमदशा देख 'अति हर्ष' हुआ। (यह निकट आनेपर देखा)। [पुनः, अति हर्ष भरतजीको कुशलपूर्वक एवं परा प्रेममें लीन देखकर हुआ। अथवा, उनको सद्‌गुरुस्वरूप जानकर उनके दर्शनसे पराभक्तिकी शिक्षा पा आनन्दित हुए जिससे पुलकादिसे पूर्ण हो गये। अथवा, जैसा पूर्व अ० काण्डमें कहा है कि *'प्रेम अमिय मंदर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर' 'राम-भगति-रस-सिद्धि हित भा यह समउ गनेस' 'रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू'* इत्यादि वह प्रेम-दर्शनसे प्राप्त हो गया। लंकाके सब परिश्रमका यह फल प्रभुने उनको दिया, यह समझकर अथवा भरतप्रेम जो प्रभुने वर्णन किया था वह देखकर और उनका सत्सङ्ग प्राप्त होनेसे तथा बड़े सुअवसरपर पहुँच जानेसे 'अति हर्ष' हुआ। (मा० म०)। पुनः, उनकी रामाकार दशा देख 'अति हर्ष' हुआ। (करु०)] (ख) श्रीभरतजीकी प्रेमदशा देखकर हनुमान्‌जी प्रेमदशाको प्राप्त हो गये, शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे जल बह चला। श्रीभरतजीकी प्रेमदशाका यह प्रभाव ही है कि उसे देखकर दूसरोंको प्रेम होता है, यथा—*'जपहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहुँ पासा॥ द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥'* (२। २२०) (ग) श्रीसीताजीकी दशा देख हनुमान्‌जी दुखी हुए थे, यथा—*'परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।'* (सु० ८) और श्रीभरतजीकी दशा देख अति हर्ष हुआ। भेदका तात्पर्य यह है कि श्रीजानकीजी पराधीन हैं, साँसतिमें हैं और दीन हैं इन कारणोंसे हनुमान्‌जीको दुःख हुआ और भरतजी स्वतन्त्र हैं, प्रेममें मग्न हैं, यह देख सुखी हुए। भरतजीकी रामप्रेमसे जो दशा थी वह हनुमान्‌जीकी भागवतप्रेममें हुई। (रा० शं० श०)

२ (क) *'बहुत भाँति सुख मानी।'* इति। इससे सूचित किया कि श्रीरामजीने हनुमान्‌जीसे जो कहा था कि यदि भरतजीका मन राज्य करनेमें प्रसन्न हो तो हम अयोध्या न चलें उसे सुनकर हनुमान्‌जी दुःखी हुए थे अब श्रीभरतजीका वैराग्य देखकर सुख माना।—(पां०)। यह बात वाल्मीकीय आदिमें है (पर मानसका यह मत नहीं जान पड़ता)। [लं० १२० (१-२) देखिये।] ऐसी विरहाग्निमें अपना शरीर बचाया और राज्यकी रक्षा की, पिताका वचन निबाहा और भाईकी भक्ति निबाही इत्यादि सब बातें समझकर हनुमान्‌जी सुखी हुए—यही *'बहुत भाँति'* है—(पां०)।

नोट—१ 'अति हर्ष' और *'सुख मानी'* का कारण वाल्मीकीयके अनुसार लेना मानसके अनुकूल नहीं है। पद्मपु० पाताल० २ मेंके श्रीरघुनाथजीके वचन यहाँ प्रसंगानुकूल हैं। वहाँ श्रीरामजीने वायुपुत्र हनुमान्‌जीसे कहा है कि—'हे वायुपुत्र! आप भरतजीके पास जाइये जो हमारे वियोगमें हठसे विभ्रम और दुर्बल हो गये, वल्कल पहने हैं, सिरपर जटा धारण किये हैं, फल भी नहीं खाते, जिनके लिये परस्त्री माताके और कंचन ढेलेके सदृश है और प्रजा पुत्रतुल्य है। ऐसा धर्मका समझनेवाला हमारा भाई वियोगजनित दुःखाग्निकी ज्वालासे दग्धशरीर है। श्रीहनुमान्‌जीने देखा कि वे तो मानो सत्त्व और धर्मकी मूर्ति हैं।'

बस, यह देखकर 'अति हर्ष' हुआ कि भरतजी ऐसे क्यों न हों कि जिनके प्रेमके वशमें रघुनाथजी आतुर हो रहे हैं! जैसा सुना वैसा पूरा पाया। दूसरे, भजनानन्दी भजनानन्दीको देखकर सुखी होता ही है। वे रामगतप्राण रामपरायण भरतजीकी स्थिति देखकर मुग्ध हो गये।

पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज कहते हैं कि शास्त्रमें भार्या, पुत्र और दास—इन तीनको निर्धन बताया है। यथा—'**त्रयस्ते अधना लोके संख्याताः सौम्य साधुभिः। भार्या पुत्राश्च दासाश्च त्वमनुज्ञातुमर्हसि॥**' '**यस्यैते तस्य तद्धनम्**'—(मनुः)। भार्याकी सम्पत्ति पतिकी होती है, इसी तरह पुत्र और दासकी जानो। अतः '***बहुत भाँति***' यह है कि भरतको राज्य धर्म और न्यायपूर्वक प्राप्त था—'***जेहि पितु देइ सो पावइ टीका***', दूसरे इनके पिता कैकेयीको वचन दे चुके थे, इससे भी भरतको धर्मयुक्त राज्य प्राप्त था। फिर वह राज्य कैसा कि इन्द्र और धनद जिसकी लालसा करें; तब भी भरतजीने उसे न ग्रहण किया। भरतजीका भायप, भरतजीका त्याग, भरतजीका धर्म-विचार कि बड़े भाईके रहते हमारा राजा होना अधर्मका मूल होगा, भरतजीका रामजीमें अतिशय प्रेम, उनके वियोगमें कैसी दशा हो रही है—इत्यादि '***बहुत भाँति***' से सुख माना। यह मत भी ठीक है।

नोट—२ '***बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी***' इति*। (क) वाणीको सुधा कहनेसे श्रवणको पुट (दोना) जनाया, यथा—'***नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर॥***' (उ० ६२) (ख) '***सुधा सम***' से मृतकजियावनी सूचित की, यथा—'***मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। स्रवनरंध्र होइ उर जब आई। हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये!""""""स्रवन सुधासम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।***' (१। १४५) में जो दशा मनु-शतरूपाजीकी दिखायी वही इन वचनोंसे श्रीभरतजीकी हुई जैसा आगे वर्णित है। पुनः '***सुधा सम***' अर्थात् परम प्रिय, यथा—'***मोहिं परम प्रिय बचन सुनाये।***' हनुमान्‌जीने तन-मन-वचन-तीनों प्रकारसे भरतजीमें भक्ति की। '***पुलक गात लोचन जल बरषेउ***' यह तनकी भक्ति है, '***मन महँ बहुत भाँति सुख मानी***' यह मनकी भक्ति है और '***बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी***', यह वचनकी भक्ति है।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन पाँती॥ ३॥
रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आएउ कुसल देवमुनित्राता॥ ४॥

शब्दार्थ—**पाँती**=पंक्ति, वाक्यावली, पदावली। **सुजन**=स्वजन, अपने भक्त=सज्जन।

अर्थ—जिनके वियोग-विरहमें (आप) दिन-रात शोच करते हैं और जिनके गुणसमूहकी पंक्ति निरन्तर (बिना अन्तर या बीच पड़े) रटते हैं वे रघुकुलमें शिरोमणि अपने जनोंको सुख देनेवाले और देवताओं तथा मुनियोंके रक्षक कुशलपूर्वक आ गये। (अर्थात् रघुकुलको और अवधवासियोंको सुख देनेके लिये आ गये)॥†३-४॥

टिप्पणी—१ '***जासु बिरह सोचहु""""""***' इति। (क) '***राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत***' पर प्रसंग छोड़ा था। अब वहींसे पुनः कहते हैं '***जासु बिरह।***' तात्पर्य कि जो बात आँखोंसे देखी वही मुखसे कहते हैं। भरत रामविरहमें डूब रहे हैं। इत्यादि हनुमान्‌जीने आँखों देखा है। यथा—'***राम बिरह सागर""""""। बैठे देखि कुसासन""""""राम राम रघुपति जपत।***' हनुमान्‌जी नौका (नाव) रूप आ गये। '***जासु बिरह सोचहु""""""***' यह कहना डूबनेवालेके पास नावका भिड़ना है। [कैसे जाना कि राम-विरहका सोच है? इससे कि रामनाम रटनेके साथ अश्रुप्रवाह जारी है। '***दिन राती***' क्योंकि वहाँ सोनेकी जगह भी न थी, केवल कष्टसे बैठनेभरकी जगह थी। (रा० शं० श०)] (ख) '***दिन राती***' देहलीदीपक है अर्थात् दिन-रात सोचते हो, दिन-रात गुणगान रटते हो।—[श्रीभरतजी दिन-रात विरहमें सोचा करते हैं, यथा—'***निसि न नींद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुचि सोच॥***' (अ० २५२) ['***रटहु निरंतर***' यहाँ रटना इस कारण कहा कि विरहमें नियम नहीं रहता, कभी पूरा, कभी आधा, कभी तिहाई, कभी चौथाई, कभी ऊँचे स्वरसे, कभी लघु (धीमे) स्वरसे विरहवन्त नाम रटता है और जितना मनमें आ गया उतना ही रटने

* अब्रवीन्मधुरं वाक्यं सुधया सेचयन्निव—(आ० रा० १। १२। ७७)।

† 'यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम्। अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वां कौशलमब्रवीत्॥' (अ० रा० १४। ५५) अर्थात् हे काकुत्स्थ! जिनका आप चिन्तन कर रहे हैं, जिन दण्डकारण्यस्थित तापस रामजीके लिये आप सोच कर रहे हैं वे आपसे कुशल पूछते हैं।

लगा। यथा—*'राम राम रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीस॥'* (२। ३८) अयोध्याकाण्डमें जो कहा था कि ***'चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई॥'*** (२। २०५। ४) वह यहाँ चरितार्थ हुआ। रटहु 'निरंतर' में वही भाव है अर्थात् आपकी रटन कभी घटती नहीं, एक तार एक रस निरन्तर चल रही है। (मा० म०)] (ग) *'गुनगन पाँती'* नाम गुणगण हैं, भरतजी नाम पंक्तिसे रटते हैं—*'राम राम रघुपति जपत।'*

प० प० प्र०—*'रटहु निरंतर गुनगन पाँती।'* इति। देखिये, श्रीसीताजीके सम्बन्धमें भी कहा है कि *'रटत रहति हरि नाम', 'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट'* और श्रीदशरथजीके सम्बन्धमें भी *'राम राम रटि भोरु किय'* कहा है, और श्रीभरतजीने कहा ही है कि *'चातक रटनि घटे घटि जाई'* इत्यादि वाक्योंसे सिद्ध होता है कि प्रेमतृषार्त्त व्याकुल जीवका यह कर्तव्य है और यह उसका सहज स्वभाव ही बन जाता है कि वह अपने प्रेमपात्र उपास्यके गुणगण अथवा नाम ही रटता रहता है और कभी स्वप्नमें भी दूसरेका भरोसा नहीं करता।

नोट—१ (क) *'रघुकुलतिलक'* का भाव कि तिलकसे मनुष्य पवित्र होता है वैसे ही आपसे यह रघुकुल पवित्र हुआ। आप इसका सुयश और पवित्रता बढ़ानेवाले हैं। इसीलिये आप कुलको छोड़कर सुर-मुनिकी रक्षाके लिये वनको चले गये थे, उनकी रक्षासे कुलका यश बढ़ाकर सुजनोंको सुख देने आये (पं० रा० व० श०)। आपने अपने कुलके धर्मका पालन किया। आपके पिता तथा सभी रघुवंशी राजा देवताओंकी रक्षा दैत्यों और राक्षसों आदिसे करते आये हैं। और आपने तो रावणका वध करके इन्द्रादि समस्त देवताओंको उसके बन्दिगृहसे छुड़ाया, ब्रह्मा और शिवजीकी साँसति भी मिटायी। (यथा—*'बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिरु नावैं॥'* (क० ७। २) यह काम कोई भी न कर सका था जो आपने किया। आपके पूर्वज अनरण्य महाराजको तो उसने मार ही डाला था। अतः आपको समस्त रघुवंशियोंमें तिलकरूप अर्थात् श्रेष्ठ कहा। (ख) *'सुजन सुखदाता'* इति। पद्म० पु० पा० में जो हनुमान्‌जीसे प्रभुने कहा है कि हमारे आगमनका संदेश देकर उन्हें शीघ्र सुखी करो, उसीके अनुकूल हनुमान्‌जीने *'सुखदाता'* विशेषण दिया है, यथा—**'येन मे सोऽनुजः शीघ्रं सुखमेति मदागमात्'** (२। ९)। (ग) *'आएउ कुसल'* इति। श्रीरामजीने जो हनुमान्‌जीसे कहा था कि *'भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु॥'* (६। १२०। २) यह वचन यहाँ *'रघुकुलतिलक.........आएउ कुसल'* कहकर चरितार्थ किया। पर केवल श्रीरामजीका आगमन सुनानेसे श्रीभरतजीका दुःख दूर नहीं हो सकता, इसीसे अगली चौपाईमें श्रीसीता-लक्ष्मणसहित प्रभुका आगमन कहते हैं। (पं० रा० कु०)।

रा० प्र०—*'आयउ कुसल देवमुनि त्राता'* का भाव कि जिनके हेतु लीला आरम्भ की थी उनका कार्यकर लीला पूरी करके आ गये। किस प्रकार लीला पूरी करके आये सो आगे कहते हैं—*'रिपु रन.........।'*

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित* अनुज प्रभु आवत॥५॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ† पियूषा॥६॥

अर्थ—शत्रुको रणमें जीतकर श्रीसीता-लक्ष्मणसहित प्रभु आते हैं, देवता उनका सुन्दर यश गाते हैं॥ ५॥ वचन सुनते ही (श्रीभरतजीको) सब दुःख ऐसे भूल गये जैसे जलका प्यासा अमृत पाकर दुःख भूल जाय‡॥ ६॥

☞समानार्थी श्लोक ये हैं—**'जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः'** (वाल्मी० ६। १२५। १३) **'निकटे हि पुरः प्राप्तं विद्धि रामं सलक्ष्मणम्'** (प० पु० पा० २। १६) **'हृदयाच्च गतः शोको हर्षास्त्रैः पूरिताननः॥ (२। १५).........रामागमनसंदेशामृतसिक्तकलेवरः। प्रापयद्धर्षपूरं हि सहस्रास्यो न वेद्म्यहम्॥'** (१७)

* 'अनुज सहित'—(पाठान्तर)।

† 'पाव पिऊषा'—(का०), 'पाइ'—(छं०, भा० दा०, रा० गु० द्वि)।

‡ १—उदाहरण अलंकार है। भरतजी रामचन्द्रजीका सन्देशा सुनना चाहते ही थे, यह चितचाही बात बिना किसी उद्योगके हनुमान्‌जीने उन्हें सुनायी, यह 'प्रथम प्रहर्षण अलंकार' है।—(वीर)

आ० रा० में भी ऐसा ही है—'**मा विशस्वानलं वीर राघवोऽद्य समागतः॥**' '**सीतया लक्ष्मणेनापि भरद्वाजाश्रमं प्रति।**.........' (१। १२। ७७-७८)।

टिप्पणी—१ *'रिपु रन जीति सुजस.........'* इति (क) क्षत्रियको विजय अत्यन्त प्रिय है, इसीसे विजय सुनायी। देवमुनित्राता हैं इसीसे देवता और मुनि उनका सुयश गाते हैं। रिपुको रणमें जीता, रावणके बन्दीखानेसे देवताओंको छुड़ाया, यह बन्दीछोर सुयश गाते हैं। [यथा—*'अरिपुर जारि उजारि-मारि रिपु बिबुध सुबास बसाए। धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाए॥ दई लंक थिर थपें बिभीषन.........।'* (गी० लं० २२), *'मारे रन रातिचर रावनु सकुल दल अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं। नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं। बाम ओर जानकी कृपानिधानके बिराजैं देखत निषाद मिटे मोद करषतु हैं। आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै तुलसी निहाल कै कै दिए सरखतु हैं॥'* (क० लं० ५८), *'दसमुख बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं। सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर नाग नर सुमुखि सना हैं॥'* (गी० ७। १३)] (ख) पूर्व जो कहा है कि *'आएउ प्रभु श्रीअनुजजुत कहन चहत अब कोइ'*, उसका यहाँ चरितार्थ है—*'सीता सहित अनुज प्रभु आवत'* इति। श्रीभरतजी सीताहरण और लक्ष्मणजीका शक्तिसे घायल होना सुन चुके हैं इसीसे हनुमान्‌जीने *'सीता सहित अनुज'* प्रभुका आना कहा। प्रथम *'आएउ'* कहा जो वर्तमान (भूतकालिक?) क्रिया है,—*'आएउ कुसल देवमुनित्राता।'* कारण कि श्रीभरतजी विरह-समुद्रमें डूब रहे थे उनको सावधान करनेके लिये भूतकालिक* क्रिया 'आये' कहना आवश्यक समझकर कहा कि वे आ गये। अब वर्तमान† क्रिया कहते हैं—*'सीता सहित अनुज प्रभु आवत'* अर्थात् अभी आये नहीं, आते हैं। *'रिपु रन जीति.........आवत'* से उसके पूर्वकी अर्धाली *'रघुकुलतिलक.........त्राता'* का अर्थ स्पष्ट होता है। रिपुको रणमें जीतनेसे रघुकुलकी शोभा हुई, सुजनोंको सुख मिला और देवताओं एवं मुनियोंकी रक्षा हुई।—[पहले सीता-हरण हुआ, पीछे लक्ष्मण-शक्ति। उसी क्रमसे यहाँ कहा। (पं० रा० व० श०)]

नोट—१ प्रथम वाक्य *'रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आएउ'* में केवल रघुनाथजीके आगमनकी ध्वनि निकलती है। श्रीलक्ष्मणजीका जीवित होना और श्रीसीताजीकी प्राप्ति उससे नहीं सिद्ध होती। अतः वे विरह-विचार-सागरमें अभी डूब ही रहे हैं। वे चिन्तामें पड़ गये कि श्रीरघुनाथजी अकेले आ रहे हैं, इसका क्या कारण है? क्या लक्ष्मणजी जीवित नहीं हुए? क्या रावणवध नहीं हुआ? श्रीसीताजीकी प्राप्ति क्या नहीं हुई? वे साथ क्या और क्यों नहीं हैं? इत्यादि। परम बुद्धिमान् हनुमान्‌जी इस बातको ताड़ गये और तुरंत इनका भी आगमन कहकर उन्होंने सब संदेहोंको दूर कर दिया। रघुनाथजीका आगमन सुननेसे कुछ दुःख तो दूर हुए—*'कपटी कुटिल नाथ मोहि चीन्हा.........'* *'बीते अवधि रहे जो प्राना।.........'* इत्यादि प्राणकी रक्षा तो हो गयी। पर सब दुःख (सीताहरण, लक्ष्मण-शक्ति इत्यादिके) दूर न हुए थे, इसीसे भरतजी प्रथम वाक्यपर कुछ बोल न सके थे और दूसरा वाक्य *'सीता सहित अनुज प्रभु आवत'* सुनते ही तुरंत उन्होंने प्रश्न किया। पुनः, सब दुःख=१४ वर्ष वियोगविरहमें जो दुःख हुए थे—*'दरस हरष दस चारि बरष के दुख पलमें बिसराये'* —(गी० लं०२२)।

२ पूरा वचन सुने बिना बीचसे ही बात काटकर बोलना सदाचार नहीं है, अतः बीचमें न बोले हों यह भी हो सकता है। पुनः,

३ पद्मपु० पा० २। ७—९ में श्रीरामचन्द्रजीने इसी प्रकार क्रमसे कहा है, वही क्रम यहाँ रखा गया है। वहाँ भी प्रभुने पहले केवल अपना आगमन फिर सबके सहित अपना आगमन कहनेको कहा है। पहले कहा कि '**मदागमनसंदेशपयो वृष्ट्याऽशुसिंचतम्**' अर्थात् हमारे आगमनके संदेशरूपी जल वा दुग्धसे उनको शीघ्र सींचिये। यह कहकर फिर कहा कि श्रीजानकीलक्ष्मणसहित तथा सुग्रीवादि कपिश्रेष्ठों और विभीषणादि राक्षसोंसहित रामजी आ रहे हैं' यह कहना।

---

* यहाँ टिप्पणीमें 'वर्तमान' और † यहाँ 'भविष्य' शब्द है।

४ 'सहित' श्लेषार्थी है। अर्थात् 'समेत' तथा 'स+हित' (=सब सखाओं-मित्रोंसहित) भी इस तरह पद्मपुराणका आशय भी यहाँ आ गया।

शीला—श्रीहनुमान्‌जीने यहाँ श्रीरामजीका आना दो बार कहा। *'रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आवत कुसल'* और *'सीता सहित अनुज प्रभु आवत।'* पहले कहा कि *'सुजन सुखदाता देवमुनि त्राता'* कुशलपूर्वक आते हैं। बिना रावण-मरणके देवमुनित्राता नहीं हो सकते और बिना लक्ष्मण-सीतासहित लौटे कुशलपूर्वक आना नहीं कहा जा सकता; इसीसे *'आवत कुसल देवमुनित्राता'* कहकर फिर दुबारा यह सब भी कहा। पुनः दुबारा कहनेका दूसरा कारण यह है कि *'रघुकुल तिलक''''''देवमुनित्राता'* कहनेपर भरतजीका दुःख इन वचनोंको सुनकर दूर न हुआ और न उनको सुख हुआ।—इतनेसे आनन्द न होनेका हेतु यह है कि इतनी बात तो जानते ही हैं कि श्रीरघुनाथजी सर्वकालमें कुशलरूप हैं और सदा देवमुनित्राता हैं। रावणवधके पहले भी थे और अब भी हैं। *'निसिचर बंस जनम सुर त्राता'* रावणवधके पूर्व ही विभीषणके ये वचन हैं। इससे *'देवमुनित्राता'* से रावणवध निश्चय नहीं होता और बिना रावणवध सीताजीकी प्राप्ति असम्भव थी—यह समझकर भरतजीके मनकी बात उन्होंने कही जिससे दुःख दूर हो गया।

पां०—*'सब दूखा'* इति। श्रीरामजीके न आनेका दुःख, सीताहरण-दुःख, लक्ष्मणशक्तिका दुःख, शत्रुके युद्धका दुःख और देवमुनिके बंदीमें होनेका दुःख इत्यादि, सब दुःख हैं। (विशेष नोटमें लिखा जा चुका है)। *'बिसरे'* कथनका भाव कि रामविरह दुःखके स्मरण होनेसे दुःख होता है, अतः उसका 'बिसर' (विस्मरण हो) जाना कहा।

.........तृषावंत जिमि पाइ पियूषा

पं०—जैसे तृषावंत जलमात्र चाहता है और उसे प्राप्त हो जाय अमृत, तब उसे जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता श्रीभरतजीको हुई। वियोगातुर भरतजी श्रीसीता-राम-लक्ष्मणका कुशल-समाचारमात्र चाहते थे और उनको रावण-ऐसे शत्रुका वध एवं देवताओंद्वारा प्रशंसित होकर आज ही आनेका समाचाररूपी अमृत मिल गया।*

शीला—यहाँ 'सब दुःख' भूलनेमें तृषावंतको 'पीयूष' प्राप्त हो जानेसे उत्प्रेक्षा करनेमें भी एक गम्भीर भाव है।

रावणवध अमिअरूप है जिसे पाकर कुलसहित वे सजीव हुए। अभीतक रघुवंश मृतकवत् था। रघुकुलके राजा अनरण्य रावणसे हार गये थे जिससे रघुकुलका पूर्व यश जाता रहा था, यही कुलका मृतकवत् होना है—*'संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥'* **'सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'** इति गीतायाम्, **'सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते'** इति श्रीमद्भागवते।

दूसरा भाव तो स्पष्ट है कि भरतजी श्रीरामवियोग-विरहाग्निरूप विषम विषसे तप्त होकर तृषित थे, रामदर्शन (रामागमन) समाचाररूपी जल पाकर प्यास बुझी—*'रूपबिंदु जल होहिं सुखारी।'*

मा० म०—पहले दोहेमें भरतजीको संदेह था कि *'कारन कवन नाथ नहिं आए'* उसका निर्वाह विद्यानिधि हनुमान्‌जीने *'आएउ कुसल देवमुनित्राता'* इस चरणमें कर दिया। इस अमृतमय शब्दके सुननेसे किंचिन्मात्र भी दुःख न रह गया, चारों ओर सुख छा गया। जैसे अमृतके प्रभावसे कणमात्र लगी हुई चोटका दुःख फिर नहीं रह जाता।

नोट—यहाँ लोगोंने शंका की है कि 'भरतजी तो रामदर्शनरूपी जलके प्यासे थे फिर अमृत क्या मिल गया?' और इसका समाधान भी अपने-अपने मतानुसार किया है।

* मा० शं०—कार कहते हैं कि यहाँ पीयूष नाम जलका है—'नाम प्रेम पीयूष ह्रद तिन्हहुँ किये मन मीन।' प्यास दूध, शर्बत या अमृतसे नहीं जाती, जलसे ही जाती है। पीयूषका काम है जिलाना। यहाँ संदेशरूपी जलने उन्हें मरनेसे बचा लिया। जलमें अमृत-समान गुण देख उसे 'पीयूष' कहा।—पर इस भावसे उनके कथनसे भी यहाँ अमृत ही अर्थ सिद्ध हुआ।

प्यासेको जल मिल जाय तो प्यास बुझ जाय पर और दुःख दूर नहीं होते, अमृत मिलनेसे प्यास भी गयी और शरीर भी नीरोग हुआ। मानो नया जीवन हुआ वैसे ही भरतजीको इन वचनोंसे श्रीरामदर्शनकी प्राप्ति हुई, यथा—*'मिले आजु मोहि राम पिरीते'* साथ ही शरीर भी पुष्ट हो गया और सीताहरण तथा लक्ष्मणशक्तिके दुःख भी दूर हुए, उनको पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। श्रीरघुनाथागमनसूचक वचनरूपी जलसे प्राणोंकी रक्षा हो ही गयी थी, उसपर भी यह विशेष समाचार अमृत पा गये। रामदर्शनकी चाह जलकी प्यास है। जलके प्यासेको अमृत मिल जाना, यह मुहावरा है। जलके प्यासेको यदि अमृत मिल जाय तो उसके आनन्दका क्या कहना! वैसा ही सुख इनको हुआ। जहाँ प्राणरक्षाके लाले पड़े हों वहाँ अमरत्वकी प्राप्ति हो जाय तो कैसे सुख होगा, यह वही जान सकता है। उत्प्रेक्षा वा सादृश्य इतनेहीमें है तथापि विशेष भाव भी इसमें कहे गये हैं।

पंजाबीजी, पं० रामकुमारजी एवं बाबा हरिदासजीके मतानुसार *'रिपु रन जीति सुजस सुर गावत'* अर्थात् रावणवध-समाचार अमृतरूप है। किसी-किसीका यह मत है कि 'रघुनाथजीसे उनके भक्तोंकी महिमा सदैव बड़ी कही गयी है। सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त और अङ्गदादि भक्त भी साथमें आ रहे हैं—यही 'अमृतवत्' है। पर, इस समाधानमें यह त्रुटि पड़ती है कि अभी तो हनुमान्‌जीने स्पष्ट रूपसे इनका आगमन कहा नहीं है।

५ किसी-किसीने 'पीयूष' का अर्थ जल किया है। पर यहाँ 'अमृत' अर्थ विशेष सङ्गत है। पद्मपु० पा० २ में भी 'अमृत' ही शब्द आया है। जैसे वहाँ भरतजीका संदेश सुननेपर, अमृतसे सींचा जाना कहा है—'**रामागमनसंदेशामृतसिक्तकलेवरः**' वैसे ही यहाँ भी 'पीयूष' शब्द दिया है। पुनः पूर्वके ***'सुधा सम बानी'*** के योगसे यहाँ 'पीयूष' का अर्थ अमृत ही विशेष सङ्गत है, यद्यपि पीयूषका अर्थ जल भी है। पुनः यथा—(आ० रा० १। १२। ७९)-'**इति तद्वाक्यसुधावृष्टिसेचितो भरतो मुदा।**'

गीतावलीमें भी सुधा और पीयूष ही शब्द आये हैं। यथा—*'रन जीति रामराउ आए। सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनंद बधाए॥.........' 'दई लंक थिर थपे बिभीषन बचन पियूष पियाए। सुधा सींचि कपि कृपा नगर नर नारि निहारि जिआए॥'* (गी० लं० २२)

६ *'बोले श्रवन सुधा सम बानी'* उपक्रम और *'तृषावंत जिमि पाइ पियूषा'* उपसंहार है।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥ ७॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥ ८॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥ ९॥

अर्थ—हे तात (प्यारे)! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? तुमने मुझे परम प्रिय वचन सुनाये॥ ७॥ हनुमान्‌जी बोले, हे दयासागर! सुनिये, मैं पवनपुत्र हूँ, वानर हूँ, हनुमान् मेरा नाम है॥ ८॥ मैं दीनबन्धु रघुनाथजीका सेवक हूँ—यह सुनते ही भरतजी आदरसहित उठकर गले लगकर मिले॥ ९॥

टिप्पणी—१ (क) ***'को तुम्ह'*** तुम कौन हो? इस प्रश्नमें भाव यह है कि तुम कोई पथिक हो या श्रीरामजीके ही कोई हो।—[पुनः, भाव कि आप देवता हैं या मनुष्य हैं जो मुझपर दया करनेके लिये यहाँ आये हैं? यथा—'**देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः**' (वाल्मी० ६। १२६। ४३)। मा० म० कार ***'तात'*** का अर्थ पिता करते हुए अर्थ करते हैं कि तुम कौन हो और तुम्हारे पिता कौन हैं, इसीसे उन्होंने पिताका नाम भी बताया। (ख) ***'कहाँ ते आए'*** का भाव कि तुमने यह वृत्तान्त किसीसे सुना है या तुम स्वयं श्रीरामजीके पाससे आते हो अथवा अनुमानसे कहा है। [पुनः, भाव कि क्या तुमने श्रीरघुनाथजीको देखा है? यदि देखा है तो तुम उनको पीछे छोड़कर पैदल यहाँ उनसे पहले कैसे आये? (पं०)] ☞ भरतजीके मनमें निश्चय नहीं हुआ, इसीसे वे उठकर मिले नहीं। जब यह निश्चय हो गया कि ये श्रीरामजीके यहाँसे आये हैं और रामदूत हैं, तब उठकर भेंट की जैसा आगे स्पष्ट है। (ग) ***'परम***

प्रिय' का भाव कि प्यासेको जल प्रिय है, अमृत परम प्रिय है अथवा 'परम प्रिय' श्रीरामजीके आगमनका संदेश है, इससे 'परम प्रिय' है।—['परम प्रिय' अर्थात् इससे बढ़कर कोई पदार्थ संसारमें प्रिय नहीं है—**'एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥'** मयंककार यह अर्थ करते हैं कि तुम मेरे परम प्रिय हो क्योंकि तुमने मुझे परम प्रिय वचन सुनाया है। [यहाँ प्रश्नसहित गूढ़ोत्तर अलंकार है—(वीर)] 'परम प्रिय' को दीपदेहली मानकर यह अर्थ भी कर सकते हैं।] यहाँतक प्रश्नोंके उत्तर हुए—

प्रश्न	उत्तर
१ ***को तुम्ह तात***	***मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥***
२ ***कहाँ ते आए***	***दीनबंधु रघुपति कर किंकर।*** अर्थात् उनके पाससे आता हूँ।

३ ☞विप्ररूप धारण किये हैं, इसीसे कहते हैं कि मैं कपि हूँ।

नोट—१ ***'मारुतसुत मैं कपि हनुमाना।........'*** इति। (क) बड़ोंसे मिलनेपर अपना परिचय देनेमें अपना और अपने पिताका नाम लेनेकी रीति है। यथा—***'पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥'*** (१। २६९। २), ***'कोसलेस दशरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥ नाम राम लछिमन दोउ भाई॥'*** (४। २। १-२) अतः 'मारुत सुत' कहकर पिताका नाम 'मारुत' बताया। पुनः, पूर्व जो ***'कहाँ ते आए'*** से शंका ध्वनित होती थी कि यदि तुम उन्हें देखकर यहाँ आये हो, तो तुम उनसे पहले कैसे आ गये, उसका उत्तर भी 'मारुत सुत' कहनेसे हो गया। पवनका पुत्र होनेसे अत्यन्त वेगसे पहले ही पहुँच गया (पं०)। प्र० स्वामीजीका मत है कि 'मारुत' =जिसके बिना अथवा जिसके बढ़ जानेसे मृत्यु होती है। 'मारुतसुत' से जनाया कि यदि हनुमान्‌जी इस समय न मिलते तो श्रीभरतजीके प्राणपखेरू उड़ जाते। मानसमें इस शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें पाया जाता है। यथा—***'ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मति धीरा॥'*** (५। ३। ५) इत्यादि। (ख) ***'मैं कपि हनुमाना'*** इति। श्रीहनुमान्‌जी विप्ररूप धरकर आये थे। जब श्रीभरतजीने प्रश्न किया कि ***'को तुम्ह तात........',*** तब अपना परिचय देते हुए कि 'मैं मारुतसुत हूँ, कपि हूँ' तत्काल ही वे वानररूप हो गये और तब अपना नाम 'हनुमान्' कहा, यह ***'मैं कपि' 'हनुमाना'*** शब्दों और क्रमसे स्पष्ट है। इस तरह ***'मारुतसुत', 'कपि', 'हनुमाना'*** तीन विशेषणोंसे तीन बातें कहीं—पिताका परिचय, अपने रूपका परिचय और अपना नाम। (मा० म०) पुनः भाव कि हनुमान् नाम और कपि जाति कहकर समाचारकी सत्यताका विश्वास कराया। अर्थात् मैं वही हूँ जो पूर्व द्रोणाचलको लिये हुए यहाँ आया था और आपको उस समयतकका सब समाचार सुनाया था (पं०)। अथवा हनुमान् नाम बताया और अपनी लघुता दिखानेके लिये 'कपि' कहा। (पं०) मयंककार यह भी लिखते हैं कि तीन विशेषणोंसे तीन गुण दिखाये। पवनका गुण शीतल। कपि अशुभ (यथा—***'असुभ होइ जिन्ह के सुमिरन ते बानर रीछ बिकारी।', 'कपि चंचल सब ही बिधि हीना॥ प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥'*** (५। ७। ७-८) और 'हनुमान्' से बल सूचित किया।

प्र० स्वामीजी कहते हैं कि 'कपि' से अशुभत्वका भाव लेना उचित नहीं है। **कं आनन्दं पिबति इति कपिः।**=तत्त्वतः ईश्वर या ईश्वरस्वरूप। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामलक्ष्मणजी और शङ्करजीके तुल्य हैं। भरतजी भी आगे कहते हैं ***'मिले आजु मोहि राम पिरीते।'*** (मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो 'कपि' कहकर अपनी जाति बतायी है)।

२ ***'नाम मोर सुनु कृपानिधाना'*** इति 'कृपानिधान' के भाव कि (क) वेषान्तर देख आप बुरा न मानें (रा० च० मिश्र)। (ख) कपिको अमंगल जान मुझपर रूठियेगा नहीं, आप मुझपर पूर्व भी कृपा कर चुके हैं; जैसे श्रीरामजी कृपाके स्वरूप हैं वैसे ही आप भी हैं। (ग) आप रामभ्राता हैं, सर्वज्ञ हैं, आपने प्रश्न करके मुझपर कृपा दर्शित की है (पं० रा० व० श०)। (घ) हैं तो सेवक और वेष है विप्रका, प्रणाम भी नहीं किया और यदि भरतजी दण्डवत् करें तो महान् अपराध, अपना नाम बतावें तो कुछ जानकर क्रोध न करें, इत्यादि विचारोंसे कुछ कहते न बन पड़ा तब कृपा-गुणका आश्रय लिया।

अतः 'कृपानिधान' सम्बोधन किया (वै०)।

२—'*दीनबंधु*......' इति। सुग्रीव, विभीषण, देवता आदि दीन थे, यथा—

सुग्रीव—'*तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥*

विभीषण—*रघुबंसबिभूषन दूषनहा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा॥*

देवता—*दीनबंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्हपर दाया॥*

समस्त दीनोंकी रक्षा श्रीरामजीने की है यही बात हनुमान्‌जी कह रहे हैं।

३ '*दीनबंधु रघुपति कर किंकर*' इति। वानर कहकर रघुपतिका किंकर कहनेके लिये '*दीनबंधु*' विशेषण देकर जनाया कि कपिको किंकर बनाना यह उनकी दीनबंधुता प्रकट करता है। अपना नाम और किंकर कहकर जनाया कि आपसे पूर्व भेंट हो चुकी है। (पं० रा० व० श०) किंकर कहकर अपनेको उनका दूत और भेजा हुआ जनाया (प० प० प्र०)। पुनः भाव कि आप दीन हैं और श्रीरामचन्द्रजी आपके बंधु हैं। वैसे ही मैं भी दीन था, मुझे दीन जानकर अपना किंकर बनाकर मुझे सनाथ किया और अपना संदेशा मेरे द्वारा भेजा (मा० म०)। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'मारुतसुत' कहकर श्रीहनुमान्‌जीने अपनेको ब्राह्मण बताया। कपि कहकर देवांश जनाया। इतनेपर भी जब श्रीभरतजी न बोले तब दीनबंधुका किंकर कहा। अर्थात् मेरा वर्ण, कुल और नाम कुछ भी नहीं है, मैं तो किंकर हूँ जैसी प्रभुकी आज्ञा होती है वैसा करता हूँ। इसीसे विप्ररूपसे यहाँ आया।

खर्रा—भरतजीके दो प्रश्न हैं। प्रथम प्रश्न यह है कि '*को तुम्ह तात*' हे तात! तुम कौन हो? इसका उत्तर '*मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥ दीनबंधु रघुपति कर किंकर*' यह है। दूसरा प्रश्न यह है कि '*कहाँ ते आए*', आप कहाँसे आये हैं? इस बातका उत्तर हनुमान्‌जी कहने न पाये कि ('*रघुपति कर किंकर*' और नाम सुनते ही भरतजी भेंटने लगे।—यह भाव '*सुनत भरत*......' का है।

मा० म०—'*सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर*' इति। जब हनुमान्‌जी सुग्रीवके भेजनेसे विप्ररूप धरकर रामचन्द्रजीके पास गये तब रघुनाथजीने उनको हृदयसे उस समयतक न लगाया जबतक वे विप्ररूपमें रहे। कपिरूप प्रकट करनेपर ही हृदयसे लगाया। वैसे ही यहाँ भरतजी तबतक हनुमान्‌जीसे न मिले जबतक वह विप्ररूप बनाये रहे; यह किष्किंधाकाण्डका उत्तर है।

नोट—मा० म० ने इस प्रसंगकी बहुत-सी चौपाइयोंको पूर्व आये हुए कुछ चौपाइयोंका उत्तर (अर्थात् स्पष्टीकरण वा चरितार्थ) कहा है।

पूर्व	उत्तर
सेवउँ अवध अवधि लगि जाई	१ *रहा एक दिन अवधि अधारा*
अवधि पार पावउँ जेहि सेई	२ *समुझत मन दुख भएउ अपारा*
जैहौं अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई॥	३ *कारन कवन नाथ नहिं आये*
रामसीय तन सगुन जनाए। अ० ७	४ *भरत नयन भुज दक्षिण फरकहिं बारहिं*......
सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अ० ६	५ *जानि सगुन मन हरष अति*
जीवन लाहु लषन भल पावा	६ *अहह धन्य लछिमन बड़ भागी*
सब तजि राम चरन लउ लावा	७ *राम पदारबिंद अनुरागी*
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी	८ *कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा*
न तरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ	९ *ताते नाथ संग नहिं लीन्हा*
देखि दोष कबहुँ न उर आने	१० *जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ*
बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर	११ *बीते अवधि रहे जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना*
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़उ प्रेम सब भाँति भलाई	१२ *रटहु निरंतर गुनगन पाँती*

बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ — *१३ बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गएउ*
निज तन प्रगट प्रीति उर छावा — *१४ मारुतसुत मैं कपि हनुमाना*
तब रघुपति उठाइ उर लावा — *१५ सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर*

मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥ १०॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥ ११॥

शब्दार्थ—पिरीते=प्रिय, प्यारे। यथा—*'हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥'* (२। १५५। ७) दरस=दर्शनसे।

अर्थ—मिलते हुए प्रेम हृदयमें नहीं समाता (अर्थात् हृदय प्रेमसे ऐसा परिपूर्ण हो गया है कि उसमें जगह न रही तब वह नेत्रों आदिद्वारा बह चला), नेत्रोंसे जल गिरता है और शरीर पुलकित हो गया॥ १०॥ (श्रीभरतजी बोले) हे कपि! तुम्हारे दर्शनसे समस्त दुःख जाते रहे, आज मुझको प्यारे रामजी मिले*॥ ११॥

टिप्पणी—१ [*'भेंटेउ उठि सादर'* के पश्चात् *'मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता'* कहकर जनाया कि बारम्बार मिलते हैं, अघाते नहीं (रा० च० मिश्र)। उठकर प्रेमसे मिले यही सादर मिलना है। गले और हृदयसे अँकवार भरकर मिले।] *'मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता।'* यह प्रेम कहकर उसकी दशा दूसरे चरणमें कहते हैं कि नेत्रोंसे जल गिरता है, शरीर पुलकित है। ☞जब (यहाँ) रामसमान मानकर हनुमान्‌जीसे मिले तब लिखा कि प्रेम हृदयमें नहीं समाता। और, जब खुद (स्वयं) रामजीसे मिले तब भरतजीको प्रेममूर्ति कहा, यथा—*'जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।'* तात्पर्य कि जब हनुमान्‌जीसे मिले तब हृदय भिन्न रहा और प्रेम भिन्न रहा और जब रामजीसे मिले तब सारा शरीर प्रेममय हो गया, मन भिन्न न रह गया।

वीर—हनुमान्‌जीके मिलनेसे भरतजी बेहद प्रसन्न हुए। उनके मिलनेको अलभ्य लाभ रामचन्द्रजीका प्रेमपूर्वक मिलना मानना 'द्वितीय विशेष अलंकार' है। [मिलान कीजिये—'**आलिंग्य भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम्। आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम्।**' (अ० रा० १४। ५९) अर्थात् प्रियवचन बोलनेवाले मारुतिजीको शीघ्र भरतजीने हृदयसे लगाकर अपने प्रेमानन्दसे उत्पन्न अश्रुजलसे सींच दिया।]

टिप्पणी—२ (क) *'कपि'* इति। हनुमान्‌जीने बताया कि मैं कपि हूँ इसीसे भरतजी *'कपि'* संबोधन देते हैं।—[वेष तो झूठा ही है—(वै०)] (ख) *'तव दरस सकल दुख बीते'* इति। श्रीरामजीके मिलनेसे सब दुःख दूर होते हैं, यथा—*'मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा'* (४। ७। १९) हनुमान्‌जीका मिलना राममिलनके समान है, इसीसे सब दुःखोंका बीतना कहा। साधुके मिलनेसे श्रीरामजीके मिलनेका सुख होता है।

रा० प्र०—सकल दुःख वह है जो "अभी *'नाथ नहिं आये'* *'लछिमन बड़ भागी'* आदि रामविरह-अनुतापसे तप्त हो प्रलाप-सा कथन हो रहा था।" (नोट—यहाँ दूसरी बार दुःख बीतना कहनेमें पुनरुक्ति नहीं है। पूर्व *'सुनत बचन बिसरे सब दूषा'* ये वक्ताके वचन थे और यहाँ भरतजीके वचन हैं। दोनों स्थानोंपर सब दुःख वही हैं।)

नोट—स्मरण रहे कि श्रीरामजीने हनुमान्‌जीको लक्ष्मणजीसे दूना—*'तै मम प्रिय लछिमन ते दूना'* कहा है और आगे सबको भरतजीसे भी अधिक कहेंगे। यहाँ भरतजी स्वयं भी उनको रामसमान अर्थात् अपनेसे अधिक कहते हैं।

बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता॥ १२॥
यह संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥ १३॥

* १—प्रायः प्राचीन सब टीकाकारों एवं वर्तमानकालके विशेष टीकाकारोंके मतानुसार यही अर्थ अर्धाली ११ का है। पर पाँड़ेजी और बैजनाथजी यह अर्थ करते हैं कि—'हे रामके प्यारे कपि! जो तुम आज मुझसे मिले तो तुम्हारे दर्शनसे हमारे सब दुःख मिट गये।' रा० प्र० भी 'राम पिरीते' का अर्थ 'राम-प्रेमपात्र' करते हैं। किसी-किसीने 'पिरीते' का अर्थ 'प्रीतिपूर्वक' किया है।

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभुचरित सुनावहु मोही॥ १४॥

शब्दार्थ—**कुसलाता**=कुशल-समाचार, यथा—'*दक्ष न कछु पूछी कुसलाता।*'

अर्थ—(मारे प्रेमके) बारम्बार कुशल पूछकर कहते हैं 'हे भाई! सुनो, तुमको क्या दूँ?॥ १२॥ मैंने विचारकर देख लिया कि संसारमें इस संदेशके समान (इसकी तुलनाका) कोई भी पदार्थ नहीं है॥ १३॥ हे तात! मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, अब मुझे प्रभुका चरित सुनाइये॥ १४॥

टिप्पणी—१ (क) '*बार बार बूझी।*' मारे प्रेमके बार-बार पूछते हैं। अथवा सब प्रकारकी कुशल और सबकी (श्रीरामजी, श्रीजानकीजी, श्रीलक्ष्मणजी, सेना इत्यादिकी पृथक्-पृथक्) कुशल पूछते हैं, इसीसे बार-बार पूछना कहा! (ख) कुशल पूछनेकी चाल (रीति) है, इसीसे कुशल पूछी। अथवा, कुशलकी बड़ी चाह थी क्योंकि संग्राम होता रहा है। अतएव बार-बार कुशल पूछते हैं। (ग) '*देउँ काह*', क्या दूँ अर्थात् तुम्हारे देने योग्य मैं नहीं हूँ (वा इस उपकारके बदलेमें देने योग्य संसारमें कोई वस्तु नहीं है तब मैं क्या दे सकता हूँ)। '*सुनु भ्राता*' इति। श्रीहनुमान्‌जीने अपनेको रघुपतिका किंकर कहा और श्रीभरतजी अपनेको श्रीरामजीका किंकर मानते हैं, इसीसे 'भ्राता' सम्बोधन किया।—[ऊपर हनुमान्‌जीको रामसमान कहा है—'*मिले आजु मोहि राम पिरीते।*' अत: बड़े भाई हुए। इससे भी 'भ्राता' सम्बोधन युक्तियुक्त है। जब रामरूप ही हैं तब उनको कोई दे ही क्या सकता है और उनसे उऋण कब हो सकता है? पुन: भ्राता सम्बोधन देकर सूचित किया कि मेरा सब कुछ तुम्हारा है—इस तरह उनको श्रीरामजीका परम प्रिय बना दिया।]

२ (क) '*यह संदेस*', इति। भाव कि संदेशसे अधिक देना चाहिये, किन्तु अधिककी कौन कहे इसके बराबरका भी कुछ नहीं है। श्रीरामजीके समान संसारमें कोई पदार्थ नहीं है। संदेशमें श्रीरामजीकी प्राप्ति है, इसीसे कहते हैं कि इस संदेशके समान संसारमें कुछ नहीं है। (ख) '*नाहिंन तात उरिन मैं तोही*' इति। संसारमें अधिक देनेको न हो तो बराबरकी चीज तो दे, यदि बराबरकी न हो तो कम न देना चाहिये, कम देना बहुत अनुचित है। अतएव कहते हैं कि मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ। उऋण नहीं हूँ, यह कहकर जनाया कि भरतजी बड़े कृतज्ञ हैं। '*नाहिन तात उरिन मैं तोही*', इससे बढ़कर देना कुछ नहीं है; चक्रवर्ती राजा होकर ऐसा कहना सब कुछ दे चुकनेके बराबर है।

☞मिलान कीजिये—'**जगाद मम तन्नास्ति यत्तुभ्यं दीयते मया। दासोऽस्मि जन्मपर्यन्तं रामसंदेशहारकः॥**' (पद्म० पु० पा० २। १८) अर्थात् भरतजीने कहा कि मेरी समझमें तो ऐसी कोई चीज नहीं है जो श्रीरामजीका संदेश देनेवालेको उसके बदलेमें दी जा सके। मैं आजीवन आपका दास हूँ।

वि० त्रि०—सरकारकी बड़ी कृपा हनुमान्‌जीपर है। अपनेको तो उनका ऋणी बता ही चुके हैं। लक्ष्मणजीका प्राण बचाया है, अत: वे भी ऋणी हैं। जगदम्बा सीताजी स्वयं कह चुकी हैं; '*का देउँ तोहि त्रैलोक्य महँ कपि किमपि नहिं बानी समा*' अत: वे भी ऋणी हो चुकी हैं; अब भरतजीको भी उनका ऋणी बनाते हैं और साथ-ही-साथ सम्पूर्ण अयोध्याको ऋणी बनाया, यथा—'*बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत।*'

टिप्पणी—'*अब प्रभुचरित सुनावहु*……' इति। श्रीहनुमान्‌जीके मिलनेसे श्रीरामजीके मिलनेके समान सुख हो चुका; यथा—'*कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥*' इतनेपर भी श्रीरामचरित सुननेकी बड़ी अभिलाषा है। इससे सूचित किया कि रामभक्तोंको श्रीरामजीसे रामचरित अधिक प्रिय है। प्रमाण, यथा—'*जिन्हके प्रभु ते प्रभु चरित पियारे*' (गी० १। १४४)। [श्रीरामजीका चरित्र भक्तोंको संतोष देनेवाला है, इसीसे उसे सुनानेको कहा। यथा—'**श्रावयामास श्रीरामवृत्तं संतोषकारकम्।**' (आ० रा० १। १२। ८१) यह उनका जीवनधन ही है; उनके प्राणोंका आधार है, जैसे मीनको जल। यथा—'*रामभगतजन जीवन धन से।*' (१। ३२। १२) (पं० रा० व० श०)। इसीके अवलम्बसे श्रीहनुमान्‌जी सदा पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। पुन: दूसरा भाव चरित सुननेका अ० रा० ६। १४। ६४-५ के अनुसार यह है कि उससे श्रीरघुनाथजीके आगमनका पूर्ण विश्वास हो जायगा। यथा—'**राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः। तत्त्वमाख्याहि भद्रं ते विश्वसेयं वचस्तव॥**' पर यह भाव मानसकविको अभिप्रेत नहीं है, क्योंकि जो चरित वे सुनना चाहते हैं वह पूर्व ही सुन चुके हैं।

अ० रा० में पूर्व हनुमान्-भरत-भेंट कभी हुई ही नहीं थी, इससे वहाँ वैसा प्रश्न और शंका योग्य ही थी, यहाँ नहीं]।

मा० म०—श्रीजानकीजीका संदेशा श्रीरामजीको और श्रीरामजीका संदेश श्रीजानकीजीको देकर हनुमान्‌जीने उन दोनोंको ऋणी किया।—(लक्ष्मणजीको द्रोणाचल लाकर जीवित कर उनको ऋणी किया) और इन तीनोंका सन्देश देकर श्रीभरतजीको ऋणी बनाया और परिवारभरको अपने वश कर लिया। इसीसे सदा श्रीरामचन्द्रजीके सङ्ग रहे और रहते हैं। सब इनके वश हैं; अतः हनुमान्‌जीके दिये बिना अब कोई श्रीरामचन्द्रजीको नहीं पा सकता।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥ १५॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहिं दास की नाईं॥ १६॥

अर्थ—तब श्रीहनुमान्‌जीने चरणोंमें मस्तक नवाकर श्रीरघुनाथजीके सब चरित्र कहे॥ १५॥ श्रीभरतजी बोले—हे कपि! कृपाल स्वामी श्रीरामजी कभी मुझे दासकी तरह याद करते हैं अर्थात् जैसे स्वामी अपने दासकी सुध करते हैं उस प्रकार मेरी सुध करते हैं?॥ १६॥

टिप्पणी—१ *'तब हनुमंत नाइ पद माथा'* इति। *'तब'* अर्थात् श्रीभरतजीके यह कहनेपर कि मैं उऋण नहीं हूँ। चरणपर मस्तक नवानेका भाव कि—(क) आप ऐसा न कहें, मैं तो आपका दास हूँ। ☞इसी तरह जब श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे कहा था कि *'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥'* तब वे श्रीरामजीके चरणोंपर (व्याकुल होकर) गिरे थे, यथा—*'सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत। चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥'* (सु० ३२) अथवा (ख) हनुमान्‌जीने वक्ताभावसे रामचरित न कहा वरन् पाँव पड़कर कहा। इस प्रकार जनाया कि मैं आपका दास हूँ, मैंने केवल आपके प्रश्नका उत्तर दिया।

मा० म०—चरणपर सिर रखकर जनाया कि इसीसे मेरा शरीर बना है और मेरा धर्म है रामचरित कहना, मैं उसे प्रेमसे कहूँगा। अथवा इस चरणके रजके बलसे कहूँगा। वा, इसमें मुझे लगाइये।

पं०—भरतजीकी भक्ति देखकर अति प्रसन्नताके कारण, वा रघुपति गुणगान प्रारम्भ करते हैं, इसलिये सिर नवाया।

टिप्पणी—*'कहे सकल रघुपति गुन गाथा'* इति। जब श्रीहनुमान्‌जी संजीवनी लेकर लौटे थे तब उन्होंने श्रीभरतजीसे रामचरित संक्षेपसे कहा था, क्योंकि उस समय अवकाश न था, शीघ्र लङ्का पहुँचना था। अब उन्होंने (अरण्यसे यहाँतकका विस्तारसे) सब चरित कहे और कहा कि पुष्पकविमानपर आकाश-मार्गसे आये हैं, वैसे ही यहाँ भी आवेंगे—यह बात आगे *'बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान॥'* (३) से स्पष्ट है।

गौड़जी—*'अब प्रभुचरित''''''''तब कहे सकल''''''''* इति। अभीतक प्रभुका संदेशमात्र सुनाया है और अपना परिचय भी पूछनेपर दिया है। प्रभुका 'सकल' चरित सुनानेका अभिप्राय यह है कि लक्ष्मण-शक्ति-समय तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको बड़ी उतावली थी। यहाँ *'अब'* शब्द इस बातको प्रकट करता है कि श्रीभरतजी इस समय सीताहरण, युद्ध और विजयकी कथा कुछ अधिक विस्तारसे सुनना चाहते हैं। यहाँ *'सकल'* से भी अभिप्राय यही है कि सारी कथा इतने संक्षेपसे सुनाना कि स्वागतके लिये प्रबन्ध करनेमें भी किसी तरहका हर्ज न हो। उतावली इस समय भी है। प्रभुके चरणोंके दर्शनोंके लिये तो श्रीभरतजी भी मरणासन्न ही थे। वहाँ लक्ष्मणजीतक संजीवन बूटी पहुँची नहीं थी और यहाँ पहुँच चुकी है। श्रीभरतजी दर्शनकी आकुलताके साथ-साथ रघुपति-गुणगाथ सुननेके लिये भी व्याकुल हैं। इस कथाके अन्तमें हनुमान्‌जीने यह चर्चा जरूर की है कि विभीषणजी विश्रामके लिये रोकते थे उस समय प्रभुने श्रीमुखसे कहा था—*'भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप सम जात।''''''''बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर॥ सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥'* (लं० ११६)

इस प्रसङ्गमें अनुज-प्रीतिका निर्देश है। परन्तु भरतजी दास्यरसके उपासक हैं, इसीलिये उतनेसे सन्तुष्ट न होकर पूछ बैठते हैं—*'कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं·········।'*

टिप्पणी—३ यहाँ साधुका दर्शन, स्पर्श और समागम तीनों लिखते हैं। *'कपि तव दरस सकल दुख बीते'* यह दर्शन है, *'मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता'* यह स्पर्श है और *'कहे सकल रघुपति गुनगाथा'* यह समागम है। जब भगवत्कृपा होती है तब ये तीनों प्राप्त होते हैं, यथा—*'जब द्रवइ दीनदयाल राघव साधु संगति पाइए। जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइये॥'* (वि० १३६)

नोट—१ *'कहु कपि कबहुँ·········'* इति। (क) यद्यपि हनुमान्‌जीने अपनेको *'कपि'* कहकर अपनी जाति बतायी और अपनी लघुता सूचित की तथापि श्रीभरतजीके *'कपि'* सम्बोधनमें 'कपि' की उस व्युत्पत्तिकी ओर भी संकेत है, जिसका अर्थ है **'आनन्दं पिबति।'** भाव कि तुमने आकर मुझे आनन्दित किया है, अत: अब यह बताकर और भी आनन्द दो। यहाँका *'कपि'* शब्द भी सिद्ध करता है कि श्रीहनुमान्‌जी अपनेको *'कपि'* कहनेके साथ ही कपिरूप हो गये थे। (ख) *'कबहुँ'* का भाव कि दास लोग अपनेको सदा अपराधी समझनेके कारण स्मरणके योग्य नहीं समझते, इसीसे *'कबहुँ'* स्मरण करनेका प्रश्न करते हैं। यथा—*'सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥'* (५। १४। ५) पुन: भाव कि तुम किष्किन्धासे लेकर अबतक बराबर साथ रहे हो और उनके परम प्रिय हो, अत: स्मरण किया होगा तो तुमको अवश्य मालूम होगा। अत: बताओ किं कभी याद आयी। (ग) *'कृपाल गोसाईं'* इति। भाव कि स्वामीमें कृपा न हो तो वह सेवकका स्मरण कभी नहीं करता, पर श्रीरामजी कृपाल स्वामी हैं, इसलिये उन्होंने मेरा स्मरण किया होगा। (पं० रा० कु०) पुन: भाव कि यद्यपि मैं अपराधी हूँ तथापि वे कृपाल और गुसाईं हैं, वे दासके अपराधको नहीं देखते, कृपा ही करते हैं। यथा—*'जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी॥·········सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥'* (२। १८३) श्रीभरतजी प्रभुके कृपाल स्वभावको खूब जानते हैं और यह भी जानते हैं कि ऐसा कृपाल स्वामी दूसरा नहीं है। यथा—*'मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥ मो पर कृपा सनेह बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी।·········मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही॥'* (२। २६०) *'जगु अनभल भल एक गोसाईं।'* (२। २६७) *'स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं। मोहिं समान मैं साइँ दोहाई·········कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँ ओर॥'* (२। २९८) *'निज करतूति न समुझिअ सपने। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥'* (२। २९९। ७) इत्यादि स्वभावका स्मरण कर *'कृपाल गोसाईं'* विशेषण देकर स्मरण करनेकी बात पूछी। भाव कि मेरे अवगुण तो ऐसे हैं कि मैं स्मरणयोग्य नहीं हूँ तथापि कृपा गुणवश कभी उन्होंने स्मरण किया हो सो बताओ।

पंजाबीजीका मत है कि प्रभुको अन्तर्यामी समझकर *'गोसाईं'* विशेषण दिया। और बाबा हरिदासजीका मत है कि प्रभुकी मन-इन्द्रिय सदा उनके हाथमें होनेसे *'गोसाईं'* कहा। सम्भवत: इसका आशय यह है कि वे समझते हैं कि हमारे दास जीव हैं, इन्द्रियोंके वशमें हैं, परवश होनेके कारण उनकी करनीका खयाल न करना चाहिये। इसीसे वे दासकी चूक नहीं मानते।

मा० म० का मत है कि हनुमान्‌जीने कथामें श्रीरामचन्द्रजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीजानकीजीका चरित्र वर्णन किया, उसमें श्रीभरतजीका कुछ भी स्मरणतक नहीं आया तब भरतजीने व्याकुल होकर प्रेमसहित पूछा कि कभी दास-ऐसा भी मुझको स्मरण करते हैं?

२ *'सुमिरत मोहि दास की नाईं'* इति। भाव कि समयपर दासकी सुध आती है कि इस समय हमारा अमुक दास होता तो यह काम कर देता। (पं० रा० कु०) पुन: *'निजदास'* की तरह स्मरण करनेका भाव कि वैसे तो सर्वकालमें मेरा स्मरण बने रहनेका योग है, क्योंकि मेरे ही हेतु श्रीसीता-राम-लक्ष्मणका वनवास हुआ, मेरे ही कारण वनमें रहकर उन्हें सब ऋतुओंमें सब प्रकारके कष्ट सहने पड़े तब भूलनेका योग ही कौन है, पर यह स्मरण शत्रुभावका है, दासभावसे नहीं। मैं तो रघुवंशदूषण हूँ, इससे मेरा दूषण कभी न विचारकर उस दूषणको मिटानेके लिये कभी मुझे अपना दास समझ मेरा

स्मरण करते हैं। (शीला)

रा० शं० श०—ऐसे ही श्रीजानकीजी और श्रीविभीषणजीके प्रश्न हैं।—

श्रीभरतजी—'*कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहिं दास की नाईं।*'

श्रीसीताजी—'*कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥*' (५। १४। ६)

श्रीविभीषणजी—'*तात कबहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥*' (५। ७। २)

श्रीहनुमान्‌जीने सबको यथार्थ उत्तर दिया और सबकी मनोकामना भी पूर्ण करायी। इससे जनाया कि श्रीहनुमान्‌जी-सरीखा रामरहस्यका ज्ञाता और भक्तोंको भगवान्‌से मिलानेवाला दूसरा कोई नहीं है—'***साहिब कहूँ न रामसे तोसे न वसीले।***'

नोट—३ श्रीभरतजी, श्रीसीताजी और श्रीविभीषणजी इन तीनोंके उपर्युक्त उद्धृत प्रश्नोंसे ज्ञात होता है कि भरतजी भगवद्द्वारा अपना स्मरण पूछते हैं, महारानीजी नेत्रोंसे दर्शनकी लालसा प्रकट करती हैं और विभीषणजी कृपाकी चाह रखते हैं। भेदका कारण स्पष्ट है। श्रीभरतजीको शंका हो रही थी कि '*जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ*'; अतः उनका प्रश्न कि हमारा कभी स्मरण करते हैं, यथार्थ ही है। श्रीभरतजीको १४ वर्ष बाद दर्शन होवेंगे ही, अतः वहाँ दर्शनकी बातका प्रयोजन नहीं। श्रीजानकीजी जानती हैं कि प्रभु '*कोमलचित कृपाल रघुराई*' हैं और उनकी '*सहज बानि*' है कि वे '*सेवक सुखदायक*' हैं; अतः उन्हें आश्चर्य है कि उन्होंने '*केहि हेतु धरी निठुराई*' अतः उनका पूछना कि '*कबहुँक सुरति करत रघुनायक*' भी यथार्थ है। वे सोच रही हैं कि हमें बिलकुल भुला दिया है—'*अहह नाथ हौं निपट बिसारी।*' श्रीभरतजी प्रभुकी आज्ञासे अवधमें रह रहे हैं और श्रीमहारानीजीको रावण जबरदस्ती ले आया है, ये उसकी कैदमें हैं, अपनेसे फिर प्रभुसे मिल सकें यह सम्भव नहीं; इसीसे वे दूसरी बात और भी यह पूछती हैं कि क्या कभी उनके दर्शन अब मुझको हो सकेंगे। विभीषणजी राक्षसोंके बीचमें हैं। बड़ी साँसतिमें पड़े हैं, धर्म-निर्वाह बड़ा कठिन हो रहा है—'*सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी॥*' नाथके शत्रुओंके बीचमें हैं। कुसंगति बिना हरिकृपाके छूट नहीं सकती। इसीसे वे कृपा चाहते हैं। दर्शन करना चाहें तो उनको रुकावट नहीं, जब चाहें आकर दर्शन कर सकते हैं—इस तरह करके गोस्वामीजीने जहाँ जैसा सुसंगत था वहाँ वैसा ही लिखा है।

छंद—निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‍यो।
सुनि भरतबचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‍यो॥
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो॥

अर्थ—'रघुवंशके भूषण श्रीरामजीने कभी निजदास (खास वा प्रिय दास) की तरह मेरा स्मरण किया', श्रीभरतजीके ये अत्यन्त विनम्र वचन सुनकर श्रीहनुमान्‌जी रोमाञ्चित-शरीर होकर उनके चरणोंपर पड़ गये। (मनमें विचारते हैं कि) जो चराचरनाथ हैं वे रघुनाथजी अपने मुखसे जिनके गुणगण वर्णन करते हैं वे श्रीभरतजी विनम्र, परम पवित्र और सद्गुणोंके समुद्र क्यों न हों (होना योग्य ही है)।*

टिप्पणी १—(क) '*निज दास ज्यों*' इति। श्रीरामजीको '*निज दास*' अत्यन्त प्रिय है, यथा—'***तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा॥***' (८६। ७) '*निज दास*'=प्रिय दास, अनन्य दास। इसी प्रश्नका उत्तर हनुमान्‌जीने आगे दिया है कि '*राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह*' (ख)—'रघुवंशभूषण' का भाव कि जैसे आभूषणसे तनकी शोभा होती है वैसे ही श्रीरामजीसे रघुवंशकी शोभा है। श्रीरामजी दासपर अत्यन्त कृपा करते हैं, इसीसे रघुवंशकी शोभा है कि रघुवंशी बड़े प्रणतपाल हैं। (ग)—'*सुमिरन कर्‍यो।*' भूत, भविष्य, वर्तमान

* 'वीर—प्रथम विशेष बात कही कि 'रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत।' उसका समर्थन सामान्यसे किया कि 'अगजगनाथ जो', इतनेसे संतुष्ट न होकर पुनः विशेष सिद्धान्तसे इसे पुष्ट करना कि 'काहे न होइ०' विकस्वर अलंकार है।

तीन काल हैं इसमेंसे वर्तमानका स्मरण प्रथम पूछ चुके, यथा='*सुमिरहिं मोहिं दास की नाईं।*' '*सुमिरहिं*' वर्तमानकाल सूचित करता है, अब भूतकालमें स्मरण करना पूछते हैं, अत: भूतक्रिया '*कर्यो*' कहा। आगे स्मरण करेंगे, इस भविष्यके पूछनेका कुछ प्रयोजन ही नहीं।

नोट—१ '*सुमिरहिं' मोहिं दास की नाईं।*' पूर्व कहकर फिर छन्दमें '*कबहुँ मम सुमिरन कर्यो*' कहा। सुमिरहिं यह वर्तमानकाल है, जिससे भूतकालकी जो क्रिया बराबर होती आयी है उसीका वर्तमानमें जारी रहना सूचित होता है। वस्तुत: यह वर्तमान भी मुख्यतया भूतकालका ही द्योतक है। इस वर्तमानसे यह कदापि सूचित नहीं होता कि पहिले स्मरण नहीं करते थे अब करते हैं। आगेके छन्दमें शुद्ध भूतकालका रूप है। दोनोंमें कोई विरोध नहीं है। अविरोध होनेपर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है। यह एक प्रकारका सिंहावलोकन है, जो रामचरितमानसमें छन्दोंके साथ प्राय: सर्वत्र देखा जाता है।

नोट—२ प्रभुको '*निजदास*' संसारमें सबसे अधिक प्रिय है, यथा—'*तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥*' (८६। ७) इसीसे वह प्राणप्रिय है; यथा—'*सत्य कहहुँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय॥*' (८७) अत: प्रभु अपने '*निज दास*' का सदैव स्मरण करते हैं, पर प्रभु अपने दासको भी कभी दासकी तरह स्मरण नहीं करते, कोई-न-कोई रिश्ता-नाता आत्मीयताका ही जोड़कर स्मरण करते हैं। श्रीहनुमान्‌जी आदर्श दास हैं, परन्तु श्रीरामजी उनको '*सुत*' कहते हैं, औरोंको सखा कहते हैं। आत्मीय भक्तोंसे माधुर्यभाव रहता है, ऐश्वर्यभाव नहीं। जहाँ ऐश्वर्यभाव व्यक्त करते हैं वहाँ जरूर अपने दास और भक्तोंका वर्णन करते हैं, यथा—'*मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा।*' श्रीभरतजी '*निज दास*' हैं, इसीसे पूछते हैं कि हमारा स्मरण कभी करते हैं। इसी प्रकार श्रीजानकीजीने पूछा था—'*कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥*' (५। १४) एक तो भरतजी शंकित थे ही कि '*जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ*', यह शंका संदेशसे मिट गयी थी, पर जब हनुमान्‌जी सारी कथा कह गये, कहीं प्रभुका इनको दासकी तरह स्मरण करना न कहा तब वे घबड़ा गये। इसीसे बार-बार पूछते हैं—'*सुमिरहिं मोहिं*' ,'*कबहुँ मम सुमिरन कर्यो*', क्या अपना दास कभी मुझे जानते हैं? इसके उत्तरमें हनुमान्‌जीने फिर भी दासकी तरह स्मरण करना न कहा, केवल प्रशंसा करने लगे।

टिप्पणी—२ '*बचन बिनीत अति*' यह कि इतने बड़े होकर भी श्रीभरतजी अपनेको स्मरण योग्य भी नहीं समझते। ऐसे दीन हैं, ऐसे अभिमानरहित हैं, यह समझकर हनुमान्‌जी पुलकित हुए और चरणोंमें पड़े। इसी तरह हनुमान्‌जीके '*दीनबंधु रघुपति कर किंकर*' यह वचन सुनकर भरतजी पुलकित हुए थे, यथा—'*सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥ मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥*'

नोट—'*कपि पुलकि तन चरनन्हि परेउ।*' (क) श्रीरामचन्द्रजी तो श्रीभरतजीका निरन्तर स्मरण करते हैं; यथा—'*भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम राम जप जेही॥*', '*रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥*' (२। ७। ८) '*सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥*' (६। ११५) श्रीहनुमान्‌जीने यह सोचकर कि हमसे बड़ी चूक हुई, हमें यह प्रथम ही कह देनी चाहिये थी, हमने न कही, उसके क्षमार्थ चरणोंपर पड़े (पं० रा० व० श०)। श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन स्मरण करते थे, यह बात हनुमान्‌जीने नहीं कही इससे भरतजी सूख गये तब हनुमान्‌जीने पद गहकर कहना योजित किया। (मा० म०) वा, (ख) भरतजीका मन अति सुकुमार है। वह श्रीरामचन्द्रजीसे विस्मरण होनेका दु:ख न सह सका। उनको विह्वल देख ये भी विह्वल हो गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े। ऐसे प्रेमप्रवाहमें भरतचरण ही आधार हुआ। (मा० म०) अथवा, यह देखकर कि इनकी भक्ति हमसे भी अधिक है, उन्होंने प्रणाम किया और विचार आगे देते हैं कि '*रघुबीर निज*………*।*'

टिप्पणी—'*रघुबीर निज मुख*………' भाव कि ईश्वरका मुख मिथ्यावादरहित है, वे कभी झूठ नहीं बोलते, यथा—'*मुधा बचन नहिं ईश्वर कहई*', '*मृषा न कहहुँ मोर यह बाना*'॥ 'निज मुखसे कहने' का आशय यह है कि श्रीरामजी भरतजीकी कुछ बड़ाई नहीं करते, उनके यथार्थ गुणगण ही कहते हैं।

(ख) *'अगजगनाथ जो'* कहनेका भाव कि श्रीरामजी चर-अचर सबके स्वामी हैं, इतने बड़े स्वामीतक जब श्रीभरतजीके गुण गाते हैं, उनकी बड़ाई करते हैं, तब उनकी बड़ाई यथार्थ ही है। अथवा जब चराचरपति उनकी प्रशंसा करते हैं तब यह निश्चय ही सिद्ध होता है कि भरतजीके समान चराचरमें कोई नहीं है, यथा—*'सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा॥'* (२। २३१। ८)

नोट—४ (क) *'काहे न होइ.........'* इति। भाव कि सर्वज्ञ स्वामी पात्र देखकर कृपा करते हैं, ये उनके कृपाके पात्र हैं, इसीसे ये सर्वगुण सम्पन्न हैं और इनका यश प्रभु श्रीमुखसे वर्णन करते रहते हैं (पं०)। श्रीहनुमान्‌जीने विनीत वचन सुने इसीसे प्रथम विनीत गुणका होना यहाँ कहते हैं तब और गुण। *'परम पुनीत'*=जिनमें रजोगुण और तमोगुणका लेश नहीं है। यथा—*'परम पुनीत भरत आचरनू।'* (२। ३२६। ५) 'सद्‌गुणसिंधु' हैं अर्थात् गम्भीरताके कारण जिनके गुणोंकी थाह नहीं है और न गुणोंका पार ही है कि कितने गुण हैं। पुनः विनीत कहकर तब सद्‌गुणसिन्धु-कथनका भाव कि बड़ेकी बड़ाई नम्रतासे ही है। नम्रता भावी योग्यताकी सूचना देती है। यथा—'**एवं वक्ष्यति को राजन्प्रभुः सन् वानरर्षभ। ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते॥**' (वाल्मी० ५। ६४। १९) '**तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित्। सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम्॥**' (२०) (मधुवनसे श्रीसुग्रीवजीके पास पयान करनेके लिये युवराज अङ्गदने बड़े विनम्र वचन वानरोंसे कहे थे, उसीपर उन्होंने उनकी प्रशंसा की कि लोग ऐश्वर्य पाकर मदोन्मत्त हो जाते हैं, युवराज होकर आपने जैसे वचन कहे वे आप ऐसे स्वामीके योग्य ही हैं। आपकी यह नम्रता भावी योग्यताकी सूचना देती है।) यह सब तथा इनसे अधिक भाव इन शब्दोंमें भरे हुए हैं, इनके सम्बन्धमें '**भविष्यत्**' शब्दकी आवश्यकता नहीं रह गयी। [रा० च० मिश्र—*'काहे न होइ बिनीत.........'* इस कथनसे भरतजीका माहात्म्य हनुमान्‌जीको भी अगम जनाया। संजीवनी लेकर जाते समय हनुमान्‌जीकी यह असमर्थता कविने दिखायी भी है। यथा—*'तीर तें उतरि जस कह्यो चहै गुनगननि जयो है। धनि भरत धनि भरत करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है॥ यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लँघ्यो बाँध्यो अँचयो है। तुलसिदास रघुबीर बंधु महिमा को सिंधु तरि को कवि पार गयो है॥'* (गी० ६। ११)]

दो०—राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि* हरष न हृदय समात॥
सोरठा—भरतचरन सिरु नाइ तुरित गएउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥ २॥

अर्थ—हे नाथ! आप श्रीरामजीको प्राणोंके समान प्रिय हैं। हे तात! मेरा वचन सत्य है।† यह सुनकर श्रीभरतजी बार-बार मिलते हैं, हृदयमें हर्ष नहीं समाता। श्रीभरतजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीके पास तुरन्त गये‡ और सब कुशल जाकर कही; तब प्रभु प्रसन्न होकर पुष्पक विमानपर चढ़कर चले॥ २॥

नोट—१ (क) *'राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह'* इति। श्रीरामजीके *'भरतदसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात।'* इस वाक्यसे तथा उनकी *'सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर'* इस दशासे श्रीहनुमान्‌जी भरतजीका प्राणप्रिय होना जानते हैं (रा० शं० श०)। जो वे जानते हैं और स्वयं देखा है वही उन्होंने कहा। पुनः, 'प्राणप्रिय' का भाव कि आपके बिना उनके प्राण बेहाल (विह्वल) रहते हैं, वे आपके दर्शनके लिये वैसे ही आतुर हैं, जैसे उनके विरहमें आप व्याकुल हैं (मा० म०)। 'प्राणप्रिय' हो यह कहकर जनाया कि सदा स्मरण करते हैं। *'सत्य बचन मम'* इति। श्रीभरतजीकी विनम्रता देखकर कहते हैं कि मेरा वचन सत्य है, मेरे वचनको झूठा न मानिये आप यह न समझें कि हमें प्रसन्न करनेके लिये ऐसा कहते हैं (पं० रा० कु०)।

* सन—मा० म०। † रा० प्र०—रामके तुम प्राणप्रिय और राम तुम्हारे नाथ, यह बात सत्य है।
‡ हनुमान्‌जीका चलना और तुरन्त पहुँचना कारण-कार्यका एक साथ वर्णन 'प्रथम हेतु अलंकार है'—(वीर)

२—*'पुनि पुनि मिलत'* अर्थात् विरहसे तप्त हृदयको शीतल करते हैं। अथवा प्रेम एवं कृतज्ञताके कारण बार-बार मिलते हैं। *'हरष न हृदय समात'* कहकर जनाया कि जितनी बार मिलते हैं उतनी बार सुख होता है और पुनः-पुनः मिलते हैं इसीसे हर्ष हृदयमें नहीं समाता (पं० रा० कु०)। पहले प्रेम हृदयमें नहीं समाता था, अब हर्ष हृदयमें नहीं समाता। ये दोनों बातें *'राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह'* अर्थात् श्रीरामजीकी अपने ऊपर परम अनुकूलता जानकर हुई (रा० शं० श०)।

टिप्पणी—१ *'तुरित गएउ'* तुरन्त गये कि श्रीरामजीको जाकर शीघ्र ले आवें। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीका समाचार लेकर तुरन्त अयोध्या आये, यथा—*'तुरत पवनसुत गवनत भएऊ'* और श्रीभरतजीका समाचार लेकर तुरन्त श्रीरामजीके पास गये। तात्पर्य कि भरतजीके बिना रामजी व्याकुल हैं—*'भरतदसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात',* वैसे ही श्रीरामजीके बिना भरतजी व्याकुल हैं। इसीसे हनुमान्‌जीने तुरंत जाकर दोनोंके क्लेश दूर किये।

२—*'हरषि चले'।* सबकी कुशल सुनकर हर्ष हुआ कि सबसे मिलेंगे।—(क्योंकि १४ वर्ष बहुत होते हैं, न जाने इतने ही दिनोंमें कितने ही मर गये होंगे पता नहीं और सन्देशके आने-जानेका पता नहीं है।) पुनः, पयानसमय हर्ष सगुन है। [पूर्व भरतकुशल विषयक कुतर्क मनमें हो रहा था वह जाता रहा, अतः *'हरषि चले'* (रा० प०)। वा, हर्ष इससे कि मेरे आनेकी प्रतिष्ठा रही, भरतजी जीते मिलेंगे। (मा० म०)]

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥ १॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥ २॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥ ३॥

अर्थ—प्रसन्न होकर श्रीभरतजी कोसलपुर (अयोध्यामें) आये और श्रीगुरुजीको सब समाचार सुनाया॥ १॥ फिर राजमहलमें बात जनायी कि श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक अयोध्या आ रहे हैं॥ २॥ बात सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। तब श्रीभरतजीने उन सबोंको प्रभुका कुशल समाचार कहकर सबको समझाया॥ ३॥

नोट—१ (क) *'हरषि भरत कोसलपुर आए'* इति। हर्षित इससे हुए कि मेरे ही कारण यह दुःखका भार सबपर पड़ा है अतः मैं ही चलकर सबका दुःख हरण कर सबको अपार सुख दूँ (मा० म०)। पुनः, पूर्व कहा ही है कि *'हरष न हृदय समात'* अतः वह हर्ष भरा हुआ ही है, परम प्रियके आगमनका हर्ष है, उसी दशामें सबको समाचार देने गये, सब सुनकर हर्षित होंगे, यह समाचार सबसे पहले मैं ही सुनाऊँ इत्यादि कारणोंसे *'हरषि .... आए'।* पुनः भाव कि पूर्व दुःखसहित आया करते थे, श्रीरामजीके न होनेसे सब उदास रहते थे (पं० रा० च० मिश्र)। (ख) *'कोसलपुर आए'* से जनाया कि श्रीहनुमान्‌जीसे नन्दिग्राममें भेंट हुई थी, जहाँ ये रहते थे। वहाँसे चलकर श्रीअयोध्यापुरीमें आये। देखिये, उधर तो *'हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि'* और इधर *'हरषि भरत कोसलपुर आए।'* (ग) कवि यहाँ स्वामी-सेवकका अन्योन्य हर्ष वर्णन करते हैं। श्रीभरतजीका समाचार पाकर श्रीरामजीको हर्ष हुआ, यथा—*'कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु',* और श्रीरामजीका समाचार पाकर श्रीभरतजीको हर्ष हुआ—*'हरषि भरत .... ।'* (पं० रा० कु०) (घ) *'कोसलपुर'* का भाव कि अब अवधपुरी सब प्रकार कुशल है। जब और दिन अवधपुरीमें आते थे तब किसी प्रकारकी कुशल नहीं देखते थे, पर आज सब प्रकार कुशल देख पड़ता है—*'मन प्रसन्न सबकेर', 'नगर रम्य चहुँ फेर।'* (पं० रा० कु०)।

२—*'समाचार सब गुरहि सुनाए'* इति। सब कार्योंमें गुरु प्रधान हैं; अथवा श्रीभरतजी गुरुजीको सबसे अधिक मानते हैं—*'तुम्ह ते अधिक गुरहि जिय जाना'* (अ० १२९)। अतएव श्रीरामजीके आगमनका आनन्द समाचार प्रथम गुरुको सुनाया (पं० रा० कु०)। पुनः सर्वप्रथम श्रीगुरुजीके पास गये, क्योंकि वे मनमें खूब समझते हैं कि इतनी बड़ी प्रसन्नताका समाचार श्रीगुरुजीकी कृपासे सुननेको मिला। सरकार स्वयं कहते हैं कि *'गुर बसिष्ट कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे॥'* अतः गुरुजीको प्रणाम करके

उन्हें सबसे पहले समाचार देना कर्तव्य था (वि० त्रि०)। ['सब समाचार' कि विरह-सागरमें मग्न थे, वैसे ही हनुमान्‌जी विप्ररूपसे आ गये। रावणका सपरिवार वध इत्यादि, प्रभुका पुष्पक विमानसे शृङ्गवेरपुर-तक आने और अब यहाँ आना ही चाहते हैं, यह सब कहा।]

'कोसलपुर' इति। इतिहाससे पता चलता है कि कोसलके दो भाग हैं। एक उत्तर कोसल, दूसरा दक्षिण कोसल। वाल्मीकीयमें श्रीअयोध्याजीको ही उत्तर कोसल बताया है—**'कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥ अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता'** (१। ५। ५-६) महाभारतमें दो कोसलका उल्लेख बहुत स्पष्ट रूपसे है। उसके सभापर्वमें भीमसेनका उत्तर कोसल अयोध्याके राजा बृहद्बलको जीतना कहा है। यथा—**'अयोध्यायां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं महाबलम्। अजयत्पाण्डवश्रेष्ठो नातितीव्रेण कर्मणा। ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान्'** (३०। ३) माद्रीनन्दन सहदेवने दक्षिण कोसल तथा उसके पूर्वके राजाओंको जीता। (अध्याय ३१) श्रीमद्भागवत और महाभारतसे स्पष्ट है कि महाभारतयुद्धके समय उत्तर कोसल-(अयोध्या-) में बृहद्बल नामके सूर्यवंशी राजा थे जो चक्रव्यूहमें अभिमन्युके हाथ मारे गये और दक्षिण कोसलके नग्नजित् चन्द्रवंशी राजा थे जो भगवान् कृष्णकी पटरानी नाग्नजिती-(सत्या-) के पिता थे।

प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीनगेन्द्रनाथ वसुने हिंदी विश्वकोषमें लिखा है कि 'अमरकण्टकसे दक्षिण कांगेरतक और पूर्वकी ओर हासदा तथा जोंक नदीसे पश्चिम वेणु गङ्गाकी उपत्यका भूमितक विस्तृत है। आजकल जिसे हम छत्तीसगढ़ या गोंडवन कहते हैं वही दक्षिण कोसल है।' आज (संवत् २०१२ में) छत्तीसगढ़में चार जिले हैं—दुर्ग (द्रुग), रायपुर, विलासपुर और रायगढ़। नागपुरसे रायगढ़तक सारा प्रान्त आज भी 'महाकोसल' के नामसे पुकारा जाता है।

सुप्रसिद्ध चीन यात्री ह्वेन च्यांगने दक्षिण कोसलका पर्यटन करके वहाँका विवरण लिखा है कि 'कलिङ्ग राज्यसे एक सौ पचास कोस उत्तर-पश्चिम चलनेसे कोसल जनपद मिलता है। इस देशका परिमाण ४१६ $\frac{१}{२}$ कोस है। इसकी प्रान्तसीमाके चारों ओर पहाड़ और जंगल हैं। इसकी राजधानी लगभग ३ $\frac{१}{४}$ कोस होगी। इससे लगभग पचहत्तर कोस दक्षिण अन्ध्र राज्य है (वे० भू०)।

टिप्पणी—१ *'पुनि मंदिर महँ बात जनाई'* इति। *'जनाई'* से सूचित किया कि राजमन्दिरमें माताओंसे कहने आप स्वयं नहीं गये। सेवकोंद्वारा कहला भेजा। यथा—*'अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी। गनक बोलाइ पाँय परि पूँछति प्रेम मगन मृदु बानी॥ तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।'* (गी० लं० १९। ३-४) इसमें एक कारण तो यह है कि श्रीभरतजीका प्रेम सब माताओंमें बराबर है, सेवकोंद्वारा समाचार पहुँचाकर सबका समान आदर उन्होंने किया। किसी माताके यहाँ जानेसे दूसरी माताका अनादर होता। पुनः, दूसरा भाव माताओंके यहाँ न जानेमें यह है कि जैसी रीति है, कायदा है, वैसा ही उन्होंने किया—गुरुके यहाँ आप गये, माताओंके यहाँ सेवकोंसे जनाया और पुरवासियोंके यहाँ किसीसे न कहलवाया, पुरवासी स्वयं जान गये। तात्पर्य कि इस काममें प्रथम गुरु श्रेष्ठ हैं, तब माताएँ और फिर पुरवासी। क्या बात जनायी सो आगे कहते हैं।

नोट—३ वाल्मीकीय और अ० रा० में तो श्रीभरतजीने श्रीशत्रुघ्नजीको आज्ञा दी कि नगर सजाया जाय और सब माताएँ तथा पुरवासी दर्शनको चलें। गुरुजीके यहाँ जाना भी उनमें नहीं है। सबके सब समाचार पाकर नन्दिग्राम आये हैं। मानसकी कथा उनसे कुछ भिन्न ही है, जैसे मानसके भरत उनके भरतसे भिन्न हैं। मयंककारका मत है कि 'श्रीभरतजी नन्दिग्रामसे नगरमें आकर श्रीगुरुमहाराजके पास बैठ गये और यहींसे श्रीशत्रुघ्नद्वारा अथवा पाञ्चजन्य शङ्खद्वारा राजमहलमें समाचार भेजा। सब माताएँ यद्यपि कृश थीं तथापि समाचार सुनकर उनमें बल आ गया और वे दौड़ीं, गुरुके यहाँ आ पहुँचीं जैसे सुतीक्ष्णजीसे समाचार पाकर अगस्त्यजी उठ दौड़े थे।'

श्रीकरुणासिन्धुजी श्रीभरतजीका स्वयं जाकर माताओंसे कहना लिखते हैं। और श्रीत्रिपाठीजी सर्व मतोंका समन्वय इस प्रकार करते हैं कि 'राजाओंके यहाँ बिना पहले समाचार दिये बड़े होनेपर लड़के भी माँके

पास नहीं जा सकते; ऐसा नियम है। अतः श्रीभरतजीने बाहर ठहरकर श्रीकौसल्या अम्बाके पास समाचार भेजा। समाचार अति संक्षेपमें था। उसे सुनते ही भीतर आने देनेकी आज्ञा देनेके बदले सब माताएँ विस्तृत समाचार सुननेके लिये अत्यन्त आर्त होनेके कारण दौड़ पड़ीं। (उस समय सभी श्रीकौसल्याजीकी सेवामें उपस्थित थीं। यथा—*'सेवहिं सकल सवति मोहि नीके।'*) यह मत प्रायः पंडित रामकुमारजीके मतसे मिलता-जुलता है जो आगे टिप्पणी ३ में है।

प० प० प्र०—*'मंदिर'* —५। ५। ५-६ में देखिये। यहाँ *'मंदिर'* शब्दसे यह भी भाव सूचित किया कि श्रीरामागमन-समाचार जिन-जिन व्यक्तियोंने सुनाया वे सभी माताओंको श्रीरामजीके समान ही प्रिय लगे। यह समाचार उनके प्रत्यक्ष आगमनके समान ही प्रिय लगा, जैसा भरतजीने कहा है *'मिले आजु मोहि राम पिरीते'* वैसा ही इनका भी कहना जानिये।

टिप्पणी—२ *'कुसल रघुराई'*—हनुमान्‌जीसे राम-रावण-संग्राम, लक्ष्मणशक्ति, सीताहरण आदि पूर्व सब सुन चुकी हैं, यथा—*'कपि सब चरित समास बखाने'* (लं०)। इसीसे कुशल सुनाते हैं। जैसा कि आपने हनुमान्‌जीसे सुना है—*'रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥'* वैसे ही आपने सुनाया।

३—(क) *'सकल जननी उठि धाईं'* कहकर जनाया कि श्रीरामजीमें सब माताओंका प्रेम बराबर है, अति आतुर हो प्रेमसे सब उठ दौड़ीं। सन्देश देनेवालेने कहा कि श्रीरामजीके कुशलका सन्देश पाकर सबसे कहनेके वास्ते भरतजी आये हैं, अमुक जगहपर बैठे हैं; इसीसे सब माताएँ भरतजीके पास धायीं। (ख) *'कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं'* इति। प्रभुकी कुशल कहकर समझानेका भाव कि सब माताएँ रामकुशल जाननेके लिये व्याकुल हैं; इसीसे श्रीभरतजीने सेवकोंसे कुशल कहला भेजा और आपने स्वयं भी कुशल कहकर समझाया। *'प्रभु कुसल'* पदसे जनाया कि प्रभुता लिये हुए कुशल कहा। अर्थात् कहा कि सब राक्षसोंको मारकर श्रीसीता-लक्ष्मणसहित प्रभु आते हैं। साथ ही समझाया कि तुम लोग श्रीरामजीसे मिलने अभी न आना, अयोध्यावासियोंकी बड़ी भीड़ होगी, मिलते न बनेगा, जब अवधवासी मिल चुकें तब तुम मिलो। इसीसे माताएँ सबसे पीछे मिली हैं।

शीला—श्रीभरतजीके मंदिरमें आगमन-समाचार प्रकट करते ही सब प्रेमवश उठ दौड़ीं तब उन्होंने समझाया कि अभी आये नहीं, आनेवाले हैं, विमानपर आयँगे, आप सब मङ्गल स्वागतकी तैयारी करें।

वि० त्रि०—भरतजीने सब समाचार पाकर उन्हें समझाया, यथा—*'जीति गढ़ लङ्क बङ्क लषन सिया के सङ्ग कुसल अनन्द सब भाँति रघुराई है। वृन्दारक वृन्दन ते वन्दित अमन्द फल कीरति सुछन्द तिहुँ लोक सरसाई है॥ विजयी विमान चढ़े आवत सुजान आइ दूत हनुमान ऐसी खबर जनाई है। वेगि साजो आरती सुमंगल कलश साजि आज महाराज रघुराज की अवाई है॥'*

समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥ ४॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥ ५॥
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलिं* सिंधुरगामिनी॥ ६॥

* 'कलभगामिनी' (पं०)। 'चलि सिंधुरगामिनी'—(का०, भा० दा०)। गौड़जीका मत है कि पाठमें 'चली' लिखा जायगा पढ़नेमें वह अवश्य ह्रस्व पढ़ा जायगा। यह कवितामें दस्तूर है। जो लोग भूलसे समझते हैं कि १५ मात्राकी चौपाई नहीं होती वे सहजमें 'सिंधुरगामिनी' को 'सिंधुरागामिनि' करके १६ मात्रा पूरी कर लेते हैं। परंतु पूर्वपादको भी पूरा करना बाकी रहता है; इसलिये भामिनीकी जगह 'भामिनि' करके १४ मात्रा कर देते हैं और 'वर' जोड़ करके १६ मात्राएँ पूरी कर लेते हैं। बैजनाथजीने इसी तरहकी जटिल काट-छाँट की है। हिन्दी कवितामें आवश्यकतानुसार गुरुको भी कभी-कभी लघु पढ़ सकनेका नियम है। इसीके अनुसार 'चलीं' के गुरुको लघु पढ़नेसे दोनों चरण १५, १५ मात्राओंके हो जाते हैं जो कि शुद्ध पाठ है। अथवा सिंधुरके अनुस्वारको चन्द्रविन्दु पढ़ लेना भी 'नन्दनन्दन' की तरह सिंधुरगामिनी पढ़ लेनेसे और 'चली' को ठीक गुरुकी तरह उच्चारण करनेसे भी १५ मात्राएँ आती हैं और छन्दोभङ्ग नहीं होता।

शब्दार्थ—**रोचन**=गोरोचन; हरदीकी बनी हुई रोरी। **नव तुलसी दल**=नवीन, यव बराबर जिसमें मंजरी है और जो दो दलयुक्त है वैसा तुलसीदल।

अर्थ—पुरवासियोंने खबर पायी। (खबर पाते ही) स्त्री-पुरुष सभी प्रसन्न होकर दौड़े॥ ४॥ दही, दूध, गोरोचन वा रोरी, फल (नारियल, सुपारी आदि), फूल और मङ्गलका मूल नवीन तुलसीदल इत्यादि सब मङ्गलमूलक चीजें स्वर्णथालोंमें भर-भरकर सौभाग्यवती, हथिनीकी-सी चाल चलनेवाली स्त्रियाँ लेकर गाती हुई चलीं॥ ५-६॥

टिप्पणी—१ (क) ***'नर अरु नारि सब धाए'*** इति। श्रीरामजीके आगमनका समाचार प्रथम पुरुषोंने पाया, पीछे स्त्रियोंने, क्योंकि ये भीतरकी रहनेवाली हैं। अतः नर-नारि क्रमसे कहा। ***'धाए'*** पदसे प्रेमकी अधिकता कही। आगे नर और नारिका हाल पृथक्-पृथक् कहते हैं, इसमेंसे प्रथम स्त्रियोंका हाल कहते हैं। (ख) ***'दधि दुर्बा·········मंगलमूला'*** इति। ***'मंगलमूला'*** पद अन्तमें देकर सूचित किया कि इनके अतिरिक्त और भी जितने मङ्गल पदार्थ हैं वे सब भी थारमें भरे हैं, यथा—***'हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूँग फल मंगल मूला। अक्षत अंकुर लोचन लाजा। मंजुर मंजरि तुलसि बिराजा॥'*** (१। ३४६। ४-५) इत्यादि।

२ (क) ***'भरि भरि हेमथार भामिनी'*** इति। ***'भरि भरि'*** का भाव कि खाली रहनेसे परिपूर्ण सगुन नहीं माना जाता, भरे होनेसे परिपूर्ण सगुन होता है। ***'हेमथार'*** कहनेका भाव कि त्रेतामें सब पात्र सुवर्णके रहे हैं इससे हेमथारमें भरना कहा। ☞यहाँतक स्त्रियोंका हाल कहा, आगे पुरुषोंका हाल कहते हैं। [भामिनीका अर्थ है दीप्तिवाली। इस पदसे जनाया कि मारे प्रेमके बिना शृङ्गार किये हुए उठ दौड़ीं। तब भी वे सहज ही सुन्दर हैं। रा० प्र०-कार भामिनीसे सोहागिनी और कुमारी दोनोंको लेते हैं। और बैजनाथजी ***'वर भामिनि'*** पाठ देते हैं अर्थात् युवावस्थाकी सौभागिनी स्त्रियाँ।] (ख) ***'गावत चली।'*** कहाँको? राजमन्दिरको चलीं। मङ्गलसमय मङ्गल वस्तु लेकर मङ्गल गाते चलीं। मङ्गल गान करती हैं। (ग) ***'सिंधुरगामिनी'*** इति। पहले समाचार निश्चय करनेके लिये उठ दौड़ी थीं। जब समाचार निश्चय हो गया तब मङ्गल द्रव्य लेकर हाथीकी चालसे धीरे-धीरे चलीं। इसीसे पूर्व ***'धाए'*** कहा और यहाँ ***'चलिं सिंधुरगामिनी'*** कहा।

पां०—सगुनकी वस्तु इसलिये लेकर चलीं कि जिसमें अब रघुनाथजी निर्विघ्नपूर्वक राज्य करें।

पं० रा० व० श०—मङ्गल हो, इस विचारसे स्वागतमें प्रथम माङ्गलिक पदार्थोंका दर्शन करानेके लिये इन्हें साथ लिया।

जे जैसहिं तैसहिं* उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥ ७॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥ ८॥

अर्थ—जो जैसे हैं (जिस दशामें हैं, जो काम कर रहे हैं) वे वैसे ही (उसी दशामें कामको छोड़कर) उठ दौड़ते हैं, बालकों और बुड्ढोंको साथ नहीं लाते॥ ७॥ एक दूसरेसे पूछते हैं (कहो) भाई! तुमने दयालु रघुनाथजीको देखा है?॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) ***'जे जैसहिं·········'*** इति। इसी प्रकार श्रीरघुनाथजीको देखनेके लिये मिथिलावासी धाये थे, यथा—***'धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥'*** (१। १२०। २) (ख) रामदर्शनार्थ प्रेमकी अधिकताके कारण पुरवासी स्त्री-पुरुषों और माताओं सभीका दौड़ना इस प्रसङ्गमें दिखाकर श्रीरामजीमें सबका प्रेम समान सूचित किया।—[नोट १·······यहाँ पुरवासियोंके विषयमें दो बार 'धावना' लिखा है, यथा—***'नर अरु नारि हरषि सब धाए'*** एवं ***'जे जैसहिं तैसहिं उठि धावहिं।'*** माताओंके विषयमें भी दो बार कहा है। एक तो यहीं—***'सुनत सकल जननी उठि धाईं'*** दूसरे आगे—***'कौसल्यादि मातु सब***

स्मरण रहे कि कविता पढ़नेकी यह विधि है और समीचीन विधि है जिससे कि मूल पाठके छूनेकी भी जरूरत नहीं पड़ती काट-छाँट तो पातक है।

* 'जे जैसे तैसेहिं'—(का०)

धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं॥' दोनोंमें एक-एक बार 'धावना' और एक-एक बार *'उठि धावना'* कहा है। २—'भामिनी' पद ऊपर दे आये पर उनका शृङ्गारयुक्त होना न कहा। इसका कारण यहाँ देते हैं कि *'जे जैसहिं तैसहिं·········'*] २ (क)—*'बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं'* क्योंकि इनको सङ्ग लगानेसे विलम्ब होता है।—[इससे दर्शनकी अति उत्कण्ठा सबमें दिखायी। जिनके सङ्ग लेनेसे पहुँचनेमें देर होगी उनको सङ्ग नहीं लेतीं। रा० प्र०] (ख)—यहाँ यह शंका होती है कि 'अवधवासियोंने तो श्रीरामजीके दर्शनार्थ १४ वर्षके लिये सब भोगोंका त्याग किया है, यथा—*'राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास। तजि तजि भूषन भोग सुख जियत अवधि की आस॥'* (२। ३२२) इससे १४ वर्ष तक किसीके बालक न हुए होंगे। तब बालकका त्याग कैसे कहा?' समाधान यह है कि वेद-मर्यादाकी रक्षाके लिये ऋतु-समयमें स्त्रीके पास जाते हैं, इसीसे बालक हुए हैं। ऋतु-समयमें स्त्रीके पास न जानेसे बालहत्या होती है। जैसा कि **'ऋतुस्नातां सतीं भार्यामृतुकालानुरोधिनीम्। अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः॥'** (वाल्मी० २। ७५। ५२) श्रीभरतजीके इस शपथसे स्पष्ट है। अर्थात् ऋतुस्नाता सती स्त्रीकी प्रार्थना न माननेवाले पतिको जो पाप होता है वह मुझे लगे यदि मेरे परामर्शसे श्रीरामजी वनको भेजे गये हों। वे सुखके निमित्त भोग नहीं करते। भोग अष्ट प्रकारके हैं—**'स्त्रग्गन्धो वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भोगास्त्वष्टविधाः स्मृताः॥'** अथवा भरतमिलाप देखनेको सब अवधवासियोंके नातेदार आये होंगे—[एवं अवधकी कन्याएँ जो देश-देशान्तरोंमें ब्याही हुई थीं वे सब श्रीरामजीके आगमनका समय जानकर अति प्रेमके कारण दर्शनार्थ आयी हैं (शीला)] उनके संगमें बहुत बालक हैं—(शीला)।

मा० म०—मूलमें बालकसे तात्पर्य है उन बालकोंसे जो श्रीरामचन्द्रजीके जानेके समय उत्पन्न हुए थे। वे अवधकी गलियोंको देखे हुए नहीं थे इसीसे वे अयोध्याके जाननेमें बालवत् थे।

बं० पा०—**'प्राप्ते स षोडशे वर्षे नरो बालो विधीयते'** (भावप्रकाश)। इस भावसे 'बाल' कहा। वा **'कविर्निमग्नः'** भावसे।

शीला—अथवा बालसे अज्ञानी और वृद्धसे ज्ञानी अभिप्रेत है। दोनों रामप्रेमरहित जड़ हैं।

मा० शं०—*'बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ'* (अ०) का यहाँ उत्तर है। भाव कि जो रामवनगमन-समय बालक और वृद्ध थे वे वैसे ही बने रह गये, बढ़े नहीं। 'मानसतत्त्वप्रकाश' का भी यही मत है—*'रामबिरह सब भोग तजि घट्यो बढ़्यो कछु नाहिं। ज्योंके त्यों रह बालबृद्ध नर नारी पुर माहिं॥'*

वि० टी०—*'बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं'* इति। प्रायः लड़कोंको जो साथ नहीं लिया सो वे या तो बहुत ही छोटे होनेके कारण सोते रहे होंगे, किंवा कुछ बड़े होनेसे खेलनेमें लगे होंगे और इन्हें साथ ले जानेमें विलम्ब होगा। कुछ भी हो बालकोंको इतना ज्ञान कहाँ कि वे अपने छोड़े जानेका पछतावा करें, परंतु बुड्ढोंको इस समय अपने निरादरके कारण कदाचित् नीचे लिखे हुए विचार उठे हों—*'अब हम जानी देह बुढ़ानी। शीश पाँव धर कह्यो न मानत तनु की दशा सिरानी॥ आन कहत आनै कहि आवत नाक नैन बहै पानी। मिटि गई चमक दमक अँग अँग की दृष्टि रु मति जु हिरानी॥ नारी गारी बिन नहिं बोलै पूत करत नहिं कानी। घरमें आदर कादर को सों खीझत रैनि बिहानी॥ नाहिं रही कछु सुधि तन मन की भई है बात पुरानी। 'सूरदास' अब होत बिगूवन भजि ले सारँगपानी॥'*

बै०—अति बाल्यावस्था और अति वृद्धावस्थावालोंको साथ नहीं लगातीं। इससे रामदर्शनके लिये उनकी आतुरता दिखायी। यह विभ्रमहाव है। अथवा गृहत्यागसे अर्थ, बालसे काम, वृद्धसे धर्म और सहज मुक्तरूप तनकी सुध नहीं, इससे मोक्षका अर्थात् चारों फलोंका त्याग दिखाकर सबको शुद्ध रामस्नेही दिखाया।

पाँ०—बालकोंका छोड़ना कहकर स्वार्थ-त्याग और वृद्धोंका छोड़ना कहकर परमार्थ-त्याग जनाया। अर्थात् श्रीरघुनाथजीके प्रेमके लिये स्वार्थ और परमार्थ दोनोंको त्याग दिया।

टिप्पणी—३ *'एक एकन्ह कहँ बूझहिं·········'* इति। (क) एक-दूसरेसे पूछनेका भाव कि भरतजीको सच्ची खबर मिली, श्रीहनुमान्‌जी उनसे कह गये, माताओंको भी सच्ची खबर मिली क्योंकि श्रीभरतजीने

स्वयं उनसे कहा; पर पुरवासियोंको सच्ची खबर नहीं मिली, इसीसे एक-एक-(दूसरे-) से पूछते हैं कि हमने सुना है कि श्रीरघुनाथजी आ गये सो कहाँ हैं, तुमने उन्हें देखा है? [यह कौन जानता था कि विमानसे सरकार आ रहे हैं। सबको यही धारणा थी कि पैदल या रथपर आये होंगे। सबने लोगोंसे समाचार पाया कि *'आये कुसल देव मुनि त्राता'* अत: एक-दूसरेसे पूछते हैं कि 'तुमने देखा है?' भाव यह कि पापशङ्की चित्त प्रिय समाचारके सत्य होनेमें संदेह करता है। और सबको इच्छा है कि शीघ्रातिशीघ्र दर्शनसे नेत्रोंको सफल करें, अत: जिज्ञासा करते हैं। (वि० त्रि०)]

मिलान कीजिये गी० लं० २१— *'सुनियत सागर सेतु बँधायो।*

कोसलपतिकी कुसल सकल सुधि कोउ इक दूत भरत पहँ ल्यायो॥ १॥
बध्यो बिराध त्रिसिर खरदूषन सूर्पनखा को रूप नसायो।
हति कबंध बल-अंध बालि दलि कृपासिंधु सुग्रीव बसायो॥ २॥
सरनागत अपनाइ बिभीषन रावन सकुल समूल बहायो।
बिबुध समाज निवाजि बाँह दै बंदिछोर बर बिरद कहायो॥ ३॥
एक एक सों समाचार सुनि नगर लोग जहँ तहँ सब धायो।
घन धुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों बूड़त जलधि पार सो पायो॥ ४॥'

(ख)—*'दयाल रघुराई'* का भाव कि रघुवंशी मात्र अपने पुरजन, परिजन और प्रजापर दया करनेवाले हैं और श्रीरामजी तो रघुवंशके राजा हैं, दया करनेमें सबसे श्रेष्ठ हैं। आशय कि हम सबपर दया करके वे आये हैं। ☞(ग)—यहाँतक अवधवासियोंका हाल कहा अब अवधका हाल कहते हैं। यहाँतक चेतनोंका मङ्गल साज, हर्ष, दर्शनकी उत्कण्ठा, इत्यादि कहा, आगे जड़ पदार्थोंका आनन्द कहते हैं। (रा० शं० श०)]

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभाकै खानी॥ ९॥
बहइ* सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥ १०॥

अर्थ—प्रभुको आते जान श्रीअवधपुरी समस्त शोभाकी खानि हो गयी॥ ९॥ तीनों प्रकारकी सुन्दर (मन्द, सुगन्धित और शीतल) वायु चलने लगी, श्रीसरयूजी अत्यन्त निर्मल जलवाली हो गयीं॥ १०॥

टिप्पणी—१ *'प्रभु आवत जानी, भई सकल सोभा कै खानी'* इति। (क) आते जान शोभाकी खानि हुई, यह कहकर जनाया कि यहाँसे प्रभुको जाते जानकर अशोभित हो गयी थीं, यथा—*'लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी॥'* (२। ८३। ५) **'एषा रामेण नगरी रहिता नातिशोभते॥'** (वाल्मी० अ० ४७। १७) **'रामसंतापदु:खेन दग्धा शोकाग्निना पुरी'** (५७। ७)। अब फिर प्रभुके संयोगको अत्यन्त सन्निकट जानकर उनकी अगवानीके लिये शोभाकी खानि हो गयी। [(ख) शोभाकी खानि कहकर जनाया कि श्रीअयोध्याजी इतने दिनों अपनी शोभा अपनेमें गुप्त किये रहीं, अब अपनेमेंसे शोभा प्रकट कर दीं (पां०)। *'अवधपुरी प्रभु'* पदसे यह भी जना दिया कि अवधपुरी श्रीरामको ही अपना प्रभु जानती मानती है। इसी तरह चित्रकूटके मार्गके विषयमें *'पति पहिचानि देहिं बर बाटा'* कहा है। प्रभु जगदात्मा हैं और पुरी ब्रह्मसच्चिदानन्द विग्रह है, यह *'जानी'* क्रिया देकर सूचित किया।]

२ (क) *'बहइ सुहावन.........'* इति। भाव कि अवधवासी रामविरही हैं। इनको सुखदायी वस्तु नहीं

* यह भा० दा०, छ०, रा० गु० द्वि० का पाठ है। का० में उत्तरार्द्ध पहले है तब पूर्वार्द्ध। भा० दा० की पोथीमें बहुत स्थानोंपर 'सरजू' की जगह 'सरऊ' है। परन्तु प्रचलित प्राकृत रूप सरजू ही है 'सरऊ' नहीं और भा० दा० की पोथीमें भी बहुत जगह 'सरजू' ही है। जान पड़ता है कि 'ज' की पुरानी लिखावटके कारण 'जू' की जगह 'ऊ' हो गया है। २—मिलान कीजिये—'सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूवियुक्ता। दूरेर्वसन्तं शिशिरानिलैर्मा तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव॥' (रघुवंश १३। ६३) अर्थात् इस कारण यह सरयू हमारी माताके तुल्य है, राजासे इसका वियोग हो गया है। दूर बसते हुए हमको शीतल तरंगरूपी हाथोंसे हृदयसे लगा रही है।

सुहाती थी। अब श्रीरामजीके आगमनमें त्रिविध समीर सुहावन लगता है। (ख) *'भइ सरजू अति निर्मल नीरा'* से जनाया कि वनवासपर श्रीसरयूजल अति मलिन हो गया था, यथा—*'सरित सरोवर देखि न जाहीं॥'* (२। ८३। ८)* ४ ☞ पुरी स्थल है, वह शोभाखानि हुई। श्रीसरयूजी जल हैं, वे अति निर्मल हो गयीं और आकाशमें त्रिविध समीर बहता है। तीनोंको लिखकर जनाया कि जल, थल और नभ तीनोंमें अत्यन्त शोभा छा गयी।

रा० प०, रा० प्र०—१ पूर्व पंचभूत विपरीत रहे, अब प्रभुके आगमनपर सब अनुकूल हो गये। *'सरित सरोवर देखि न जाहीं'* इस उपक्रमका यहाँ उपसंहार है। अवधपुरी भूमि, सरयू जल, त्रिविध समीर पवन, हर्षित मन एवं मुखविकाससे तेज प्रकाश, गगनमें विमान देखनेसे आकाश निर्मल और मधुर गानसे भी आकाशकी निर्मलता इस तरह पञ्चतत्त्वकी निर्मलता कही।

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन† प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥ ३ (क)॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥ ३ (ख)॥

शब्दार्थ—**अटारी**=कोठा; घरके सबसे ऊपरकी छत।

अर्थ—गुरु वशिष्ठ, कुटुम्बी भाई-बन्धु, भाई शत्रुघ्न और (वामदेवादि) ब्राह्मण-ऋषि-वृन्द सब हर्षित हैं, इन सबके सहित भरतजी मनमें अत्यन्त हर्षित होकर अत्यन्त प्रेमसे दयाके धाम श्रीरामजीके सम्मुख (स्वागतके लिये) चले। (बहुत-सी स्त्रियाँ नीचे हैं और) बहुत-सी अटारियोंपर चढ़ी आकाशमें विमानको देखती हैं (क्योंकि श्रीहनुमान्जी कह गये हैं कि श्रीरामजी विमानपर आकाशमार्गसे आवेंगे), देखनेपर प्रसन्न होकर मीठे स्वरसे सुन्दर मङ्गल गीत गा रही हैं।

टिप्पणी—१ (क) सब हर्षित हैं और भरतजी अति हर्षित हैं। (ख) *'सन्मुख कृपानिकेत'* इति। आचार्योंमें मतभेद है। किसीका मत है कि अयोध्याकी पूर्व दिशामें मिलाप हुआ और किसीका मत है कि दक्षिण दिशामें श्रीरामभरतमिलाप हुआ। इसीसे गोसाईंजीने किसी दिशाका नाम नहीं दिया। सम्मुख जाना लिखकर सबके मतकी रक्षा की, इस तरह कि जिस दिशासे प्रभु आये हों उसी दिशाको चले। (ग) कृपानिकेत हैं अर्थात् हम सबपर कृपा करके आ रहे हैं। ☞ जैसा बड़े लोगोंसे मिलनेका कायदा है, उसी रीति-भाँतिसे भरतजी रामचन्द्रजीसे मिले। ऐसे ही श्रीजनकजी विश्वामित्रजीसे मिले थे—*'संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुरु ग्याति। चले मिलन मुनि नायकहि मुदित राउ येहि भाँति॥'* (१। २१४) पुनः, यथा—**'भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः॥ प्रत्युद्ययौ यदा रामं महात्मा सचिवैः सह।'** (वाल्मी० ६। १२७। २०-२१) अर्थात् भाईका आगमन सुन श्रीभरतजी बहुत प्रसन्न हुए और मन्त्रियोंसहित अगवानीको चले।

२ (क) *'निरखहिं गगन बिमान।'* भाव कि विमान दूर है, निरखनेसे देख पड़ा। (ख) *'मधुर सुर'* से गाती हैं क्योंकि यह मङ्गलका समय है, कटु स्वर होना अमंगलसूचक है।—[ये अटारियोंपर हैं इससे इनको प्रथम देख पड़ा। अतः इनका प्रथम देखना कहा—(पं० रा० व० श०)] ये वे स्त्रियाँ हैं जिनको बाहर निकलनेमें संकोच है। ये परदेवाली हैं (पं०)।

नोट—१ आदिमें गुरु और अन्तमें भूसुरवृन्द दिया क्योंकि ये दोनों मङ्गल करनेवाले हैं। गुरु प्रधान हैं अतः इनको सबसे आगे रखा है।

---

* 'लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः' (वाल्मी० अ० ५९। ७)। 'चन्दनागुरुसम्पृक्तो धूपसम्मूर्च्छितोऽमलः। प्रवाति पवनः श्रीमान्किं नु नाद्य यथा पुरा॥' (७१। २८)

† अति प्रेम मन—(का०)।

२—*'मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै बिप्रसमाजा॥'* (१। २०७। १) जब मुनि विश्वामित्रसे राजा दशरथजी मिलने गये तब केवल विप्रसमाज ले गये थे। और श्रीजनकमहाराज औरोंको भी साथ ले गये थे। कारण कि विश्वामित्रजीके साथ जनकपुरमें क्षत्रिय बालक भी थे और अवधमें वे अकेले ही आये थे। मुनिकी अगवानीके लिये मुनियोंको ले गये और राजपुत्रोंकी अगवानीके लिये क्षत्रियोंको भी ले गये। विशेष (१। २०७। १) एवं (१। २१४) में देखिये। और इस समय तो राजाकी अगवानी है; इसलिये राज्यके सब खम्भ साथ हैं। पुनः, श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्मण्यदेव हैं, ब्राह्मणोंमें उनका प्रेम है, अतः भूसुरवृन्दको साथ लिया।

रा० शं०—*'हरषित गुर परिजन'* इति। श्रीभरतजीने पहले गुरुमहाराजको समाचार दिया, फिर मन्दिरमें खबर जनायी तब पुरवासियोंको मालूम हुआ; उसी क्रमसे यहाँ हर्षमें पहले गुरुमहाराज तब कुटुम्बी तब ब्राह्मण और पुरवासी कहे गये।

दो०—राकाससि रघुपति पुर* सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो† कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥ ३ (ग)॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं। अवधपुर समुद्ररूप है। वह समुद्ररूप अवधपुर पूर्णचन्द्ररूप रघुनाथजीको देखकर हर्षित हुआ। ऐसा मालूम होता है मानो वह कोलाहल करता हुआ बढ़ रहा है, उसकी स्त्रियाँ ही तरंगके समान हैं॥ ३॥

नोट—१ श्रीरामजीपर पूर्णचन्द्रका आरोप किया गया इसीसे पुरपर समुद्रका आरोपण हुआ। यह परम्परितके ढंगका 'सम अभेदरूपक अलंकार' है। *'बढ़्यो कोलाहल करत जनु'* में उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

२—*'सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद्र मुखचंद निहारी॥'* अतः *'रघुपति'* को पूर्णचन्द्रसे उपमित करना प्राप्त है, और जब सरकारकी उपमा चन्द्रसे दी, तब पुरकी उपमा सिन्धुसे देना ही चाहिये। चन्द्रकी उत्पत्ति सिंधुसे है, और सरकारका आविर्भाव अयोध्यापुरीसे है। यथा—*'जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि।'* पूर्णचन्द्रको देखकर सिन्धु बढ़ता है, उसमें ऊँचे कल्लोल उठते हैं, यहाँ सरकारको देखकर अयोध्यापुरी ऊपरकी ओर बढी, उसमें स्त्रीसमाज ऊपर मकानोंके छतपर गान करता हुआ आ गया, जिसकी उपमा कोलाहल करते हुए तरंगसे दी गयी (वि० त्रि०)।

प० प० प्र०—जहाँ श्रीरामजीको शशिकी उपमा दी गयी हो वहाँ 'चारु' विशेषणका अध्याहार समझना चाहिये अन्यथा चन्द्रमाके सभी दोष भी आरोपित होंगे। *'प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू।'* (१। १६। ५) रावणको केवल शशि कहा है और उसमें सोलह दोष हैं—*'चले जहाँ रावन ससि राहू।'* [रघुपति चारु शशि रूप हैं इसमें सन्देह नहीं, पर केवल *'ससि'* से चन्द्रमाके दोष भी आरोपित होंगे इससे दास सहमत नहीं। उपमाके जितने अङ्ग अनुकूल हों उतने ही लिये जाते हैं, सब नहीं। कहीं-कहीं एक-दो ही अङ्गमें समानता ली जाती है। (मा० सं०)]

टिप्पणी—१ *'राकाससि रघुपति'* इति। श्रीरामजीको पूर्णचन्द्र कहा। पूर्णचन्द्र १४ तिथियोंके बाद पन्द्रहवीं तिथिमें उदय होता है वैसे ही यहाँ श्रीरामजी १४ वर्षके बाद पन्द्रहवें वर्षमें आये। [☞पूर्ण रूपक निम्न मिलानसे स्पष्ट समझमें आ जायगा। इस मिलानका विशेष अंश मुं० रोशनलालजीकी टीकामें भी है।]—

उपमान	उपमेय
पूर्णचन्द्र १४ तिथियोंके बाद १५ वीं तिथिपर उदय। उदय	१ रामजी १४ वर्ष बाद १५वें वर्ष आये। आगमन
आकाशमें उदय होता है	२ ये विमानपर आकाशमें हैं
यह तारागण सहित	३ ये सखाओंसहित

* अवध—मा० म०। † बढ़ेउ—(का०)।

यह रोहिणी और बुधसहित — ४ ये सीता-लक्ष्मणसहित
यह सब कला पूर्ण होता है — ५ ये सब शोभायुक्त हैं
यह ताप हरता है — ६ ये विरहका ताप हरते हैं
इसे देख समुद्र बढ़ता है — ७ इनको देख पुर हर्षित हो बढ़ा

असंख्यों मनुष्य अटारियोंपर चढ़े हैं, यही समुद्रका ऊँचा होना है। समुद्र तरङ्गोंसे बढ़ता है, पुर अटारीवाली स्त्रियोंसे ऊँचा हुआ, यही तरङ्गोंसे बढ़ना है। यही ऊँची तरङ्ग है। तरङ्गमें शब्द वैसे ही गानमें शब्द।—(स्त्रियाँ दर्शनलालसा और लज्जासे जो प्रकट होती और छिपती हैं, यथा—'*प्रगटहिं दुरहिं अटनि पर भामिनि*', वही तरङ्गें हैं जो प्रकट होती और छिप जाती हैं।)

चन्द्रमा समुद्रसे प्रकट हुआ इसीसे समुद्र उसकी शोभा देख हर्षित होता है — ८ ये अवध-सिन्धुमें प्रकट हुए, अतः इनकी शोभा देख पुर हर्षित हुआ
समुद्रके बढ़नेसे शब्द होता है — ९ पुरमें स्त्रियोंके गान और पुरवासियोंके बोलनेसे कोलाहल होता है।

१० पूर्णचन्द्र पूर्वमें उदय होता है। ☞इस रूपकसे जनाया कि श्रीरघुनाथजी पुरवासियों आदिसे मिलनेके लिये अयोध्याके पूर्व दिशामें आ गये।

पाँ०—चन्द्रमा राहुसे छूटनेपर शोभित — ११ राम रावणको जीतकर शोभित।

(प्र० स्वामीजी कहते हैं कि रावण—राहुने श्रीराम—चारुचन्द्रको कभी ग्रसा ही नहीं और न ग्रस सकता है, अतः ऐसा कहना ठीक नहीं है। मेरी समझमें पाँड़ेजीने यह मिलान जो दिया है वह इस विचारसे कि सीताहरण करना ही ग्रसना है, रावण-वध करके वे सीताजीको न लाते तो शोभित न होते।)

नोट—मा० म० कार लिखते हैं कि जिस दिन श्रीरामचन्द्रजी वनको गये वही अमावस्या है, उनका दर्शन न होना चन्द्रमाका न होना है। पहिला वर्ष प्रतिपदा है। मुंशी रोशनलालजी लिखते हैं कि यहाँ पूर्णोपमा है और विलक्षणता यह है कि यहाँ उपमेय-उपमानकी समता है अर्थात् रघुनाथजी पुरुष और पुर भी पुँल्लिङ्ग और इनके उपमान चन्द्रमा और सिन्धु भी पुँल्लिङ्ग, इसी तरह स्त्रीकी उपमा तरङ्ग भी स्त्रीलिङ्ग है।

☞नोट— द्वितीय सोपानके आरम्भमें भी अवधका समुद्रसे और श्रीरामचन्द्रजीका चन्द्रमासे रूपक दिया गया था, यथा—'*रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई। उमगि अवध अम्बुधि कहुँ आई॥*.........*सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी॥*' (२। १। ३, ६) उस समय भी रामराकेशको देख पुरसिन्धु सुखी था, बीचमें वनवासरूपी अमावस्या आ जानेसे पुरसिन्धुका आनन्दकोलाहल मिट गया था। सन्नाटा छा जाना समुद्रका शान्त होना है। मा० म० में 'पुर' की जगह 'अवध' है।

इहाँ भानुकुल-कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर*॥ १॥
सुनु कपीस अङ्गद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥ २॥

अर्थ—यहाँ सूर्यवंशरूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यरूप श्रीरघुनाथजी वानरोंको सुन्दर नगर दिखाते हैं॥ १॥ कपिराज श्रीसुग्रीवजी, अङ्गदजी और लङ्कापति श्रीविभीषणजी! सुनिये। यह पुरी पवित्र एवं पवित्र करनेवाली है और यह देश (जिसमें यह पुरी है वह भी) सुन्दर है॥ २॥

☞नोट—१ '*इहाँ*' पद देकर पूर्व प्रसङ्गकी समाप्ति और दूसरे स्थानके प्रसङ्गका आरम्भ जनाया। यहाँ कवि श्रीभरतजी और श्रीरामजी दोनोंके साथ अपना होना दिखाते हैं। इसीसे '*हरषि भरत कोसलपुर आये*' '*गयउ कपि राम पहिं*' '*कही कुसल सब जाइ*' से भरतजीके साथ होना स्पष्ट है। और '*इहाँ भानुकुल*..........' से श्रीरामजीके साथ होना भी स्पष्ट है।

२—इस समय श्रीरघुनाथजी आकाशमें विमानपर हैं, अतः राकाशशि और दिवाकरकी उपमा बड़ी

* सुभाकर—(पं०, करु०, पां०, वै०)

ही उत्तम है, दोनों आकाशमें हैं। पूर्णचन्द्र और सूर्य दोनोंसे जगत्‌का पालन-पोषण होता है, एकहीसे नहीं। पुनः, सूर्य दिनमें और चन्द्र रात्रिमें सुख देते हैं और प्रभु निरन्तर सुख देते हैं, अतः रघुनाथजीको राकाशशि और दिवाकर दोनों कहा*। ३—काण्डके आरम्भमें पहले पुर-नर-नारिका आर्त्त होना कहा तब कुलका, उसी क्रमसे यहाँ पहले पुरका हर्ष कहा तब कुलका प्रफुल्लित होना।

टिप्पणी—१ *'भानुकुल कमल दिवाकर'* कथनका भाव कि १४ वर्षतक श्रीरामरूपी सूर्य यहाँ नहीं रहे, इसीसे भानुकुलकमल संपुटित रहा, यथा—*'राम दरसहित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥'* (२। ८६) इस कुल-कमलके प्रकाशक राम-सूर्य हैं।—[बाबा हरीदासजीका मत है कि राजा अनरण्यके हारनेसे रावणके जीते-जी रघुकुल-कमल संपुटित था। रावणवध करके आपने उस कुलको प्रफुल्लित कर दिया, अतएव यहाँ उनको 'दिवाकर' कहा।]—सूर्यविहीन होनेसे 'कोक, कोकी और कमल' तीनका दीन होना उपर्युक्त उद्धृत दोहेमें कहा गया। इसमेंसे 'कोक-कोकी' का दृष्टान्त अ० १८७ (१) *'चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥'* में चरितार्थ कर आये, रहा कमलका दृष्टान्त, उसे यहाँ चरितार्थ किया। (ख)—*'नगर मनोहर'* का भाव कि जब राम-सूर्य न थे तब यह अशोभित था, अन्धकारमय था। दोहा ३ (९) देखिये। (ग) नगर दिखानेका भाव यह है कि यह नगर ब्रह्माण्डमें अद्भुत पदार्थ है, बिना श्रीरामजीके दिखाये नहीं देख पड़ता; इसीसे श्रीरामजी अपने सखाओंको दिखाते हैं। [बिना हमारे बताये वे श्रीअवधपुरीका प्रभाव नहीं जान सकते, यह सोचकर पुरीका वर्णन करते हैं। (वै)] वानर श्रीरामजीका नाम जपते हैं, रूप देखते हैं, लीलामें शामिल हैं, बाकी रहा धाम, सो उसे श्रीरामजी दिखाते हैं। इस प्रकार वानरोंको नाम, रूप, लीला और धाम चारों प्राप्त हैं। ये चारों नित्य हैं।

२ (क) *'सुनु कपीस………'* इति। सुग्रीव प्रथम सखा हैं अतः इन्हें प्रथम कहा, अङ्गद उनके युवराज हैं इससे उनके पीछे अङ्गदका नाम लिया। लङ्कापति पीछेके सखा हैं अतः उनके पीछे इनको कहा। (ख) प्रथम कहा कि *'कपिन्ह देखावत'* और अब कहते हैं *'सुनु कपीस।'* इसका तात्पर्य यह है कि सुग्रीवादिसे प्रथम कहकर तब वानरोंको नगर दिखाते हैं। [पर इस भावसे क्रम पलट जाता है। पहले सबको दिखाना कहकर फिर उस दिखानेका प्रकार कहते हैं। सुग्रीवादि प्रधान सखा और अत्यन्त समीप हैं। इनको सम्बोधन करते हुए सबको सुना रहे हैं। इसीसे यहाँ उपक्रममें *'कपिन्ह देखावत'* और *'सुनु कपीस'* पद दिये और उपसंहारमें कहते हैं कि *'हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी।'* सबको दिखाया, सबको सुनाया, अतः सब *'हरषे'*। (मा० सं०)] (ग) *'पावन पुरी'* अर्थात् यह पुरी पवित्र करनेवाली है, इसके दर्शनसे समस्त पापोंका नाश होता है, यथा—*'बंदौ अवधपुरी अति पावनि।'* (बा० १६। १) *'देखत पुरी अखिल अघ भागा।'* (२९। ८) नगर मनोहर है अर्थात् इसकी सुन्दरता देखकर मुनियोंका वैराग्य भूल जाता है, यथा—*'नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥ दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं॥'* (२७। १-२) ☞*'नगर मनोहर'* और *'पावन पुरी'* दो बातें कहनेमें भाव यह है कि नगर रूपसे सुन्दर है, नगरकी सुन्दरता ही सराही जाती है। पुरी रूपसे पावनी है, क्योंकि तीर्थकी पावनता सराही जाती है। पुनः, *'पावन पुरी'* कहकर जनाया कि यह निर्मल शुद्ध ब्रह्मस्वरूपिणी है, इसके निवासी जगन्नाथरूप हैं, यथा पाद्मे—**'अयोध्या च परं ब्रह्म सरयू सगुणः पुमान्। तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥'** (करु०) पावनता यह कि यह भगवान्‌का मस्तक है; उसका नाम त्रिदेवमयी है, पाप सम्मुख जाता नहीं। यथा अयोध्यामाहात्म्ये—**'अकारो वासुदेवः स्याद्यकारस्तु प्रजापतिः। उकारो रुद्ररूपस्तु ताम्ध्यायन्ति मुनीश्वराः। सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः। अयोध्या सर्वतो यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः॥'** (वै०)]। यह कहकर फिर कहा कि *'रुचिर यह देसा'* अर्थात् जिस देशमें अयोध्यापुरी तीर्थ है वह देश पवित्र और सुन्दर है। कोई तीर्थ ऐसे हैं कि जिस देशमें हैं वह देश अच्छा नहीं है अर्थात् अपवित्र

* गौड़जी—सरकार पूर्णिमाको श्रीअवधमें लौटकर आये और जिस समय अवध पहुँचे सूर्य अस्ताचलको जा रहे थे। इस तरह सूर्य और चन्द्र दोनों उस समय मौजूद थे। यह बात 'राकाशशि' और 'दिवाकर' शब्दोंसे सूचित होती है। [वाल्मी० के मतसे सप्तमी या अष्टमीको प्रभु अवधमें आये।]

है, यथा—*'लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥'* (२। ४२। ७) इन विशेषणोंके देनेका आशय यह है कि अयोध्याके समान पृथ्वीमें न कोई तीर्थ है, न कोई नगर है।—*'अयोध्यापुरी मस्तके।'*

रा० प्र०—*'भानुकुल कमल दिवाकर'* उपसंहार है, *'मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि'* इसका उपक्रम है।

वै०—*'यह देसा'* अर्थात् काशीसे मथुरातक आर्यावर्त देश है, यह सुन्दर है। सुन्दरता यह है कि यहाँ पहाड़ नहीं हैं, भूमि समथर है, सब प्रकार अन्न, रस, फलादि सब उत्तम हैं, पवित्र-शिरोमणि नदियाँ सरयू, गङ्गा, यमुना, सरस्वती इत्यादि इस देशमें हैं·········इत्यादि।

गौड़जी—*'रुचिर यह देसा'* कहनेका एक तात्पर्य यह भी है कि कृषि और पार्थिव सम्पत्तिसे भरे-पूरे संसारके प्रसिद्ध देशोंमें आर्यावर्त एक उत्तम देश कहा जाता है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥ ३॥
अवधपुरी* सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥ ४॥

अर्थ—यद्यपि सबने वैकुण्ठका बखान किया है, वेद-पुराणमें विदित है और जगत् जानता है॥ ३॥ पर अवधपुरीके समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है; यह बात कोई-कोई ही जानते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) वैकुण्ठ वेद-पुराणमें विदित है और जगत् जानता है। अर्थात् लोक और वेद दोनोंमें प्रसिद्ध है। ☞ प्रमाण चार प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। यथा—**'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।'** (गौतमसूत्र) *'सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥'*—प्रत्यक्ष है और *'अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ'* अर्थात् वैकुण्ठ अवधके समान नहीं है—उपमान है।

(ख) *'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना'* इति। सब बखान करनेवाले मुनि लोगोंने अपनी-अपनी संहिताओंमें वैकुण्ठका बखान किया है। (ग) *'अवधपुरी सम प्रिय नहिं'* अर्थात् हमको वैकुण्ठ प्रिय है पर अवधके समान प्रिय नहीं है, वैकुण्ठ तीनों लोकोंसे अधिक है और अयोध्या वैकुण्ठसे भी अधिक है।

* जद्यपि सब बैकुंठ बखाना *

नोट—विद्वान् वैष्णवाचार्यों तथा स्मार्तपण्डितोंसे जो श्रुति, स्मृति, पुराणादिके अच्छे ज्ञाता हैं, सुना जाता है कि श्रुतियोंसे यह तो निर्विवाद स्पष्ट है और समस्त वैष्णवाचार्योंने, चाहे वे श्रीरामानुजानुयायी हों चाहे रामानन्दानुयायी, इसे स्वीकार किया है कि श्रीरामजीका लोक साकेत (अयोध्या, अपराजिता इत्यादि पर्यायवाची शब्द हैं) है—*'अंतकाल रघुपति पुर जाहीं'* दोहा १५ (४) में देखिये। *'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना'* में भगवान् श्रीरामजी इतना ही कह रहे हैं कि वैकुण्ठकी सब प्रशंसा करते हैं, वे यह नहीं कहते कि वैकुण्ठ हमारा लोक है या कोई और लोक हमारा लोक है। ऐसा जानकर किसीको 'वैकुण्ठ' शब्दपर वाद-विवाद करना ही न चाहिये। फिर यह भी बात मानी जाती है और लोकमें बोल-चाल इस प्रकार लोग नित्यप्रति सुनते ही हैं कि 'वैकुण्ठ' शब्दसे भगवद्धामका अर्थ और भाव लिया जाता है, चाहे वह क्षीरशायी भगवान्का लोक हो, चाहे साकेत हो, चाहे गोलोक हो—इत्यादि। 'वैकुण्ठ' नाम इससे है कि कुण्ठका अर्थ है नाश। जिसका नाश न हो अर्थात् अक्षय लोकका नाम वैकुण्ठ है—**'विगतः कुण्ठः यस्माद् असौ विकुण्ठ एव वैकुण्ठः।'** 'वैकुण्ठ' एवं स्वर्ग सबके लिये प्रयुक्त होता देखा-सुना जाता है, भगवान्का कोई खास लोक नहीं भी है और है भी, वे तो सर्वत्र हैं और साथ ही उपासकोंके भावानुसार किसी एक खास लोकमें भी उनका निवास है। भगवान् रामचन्द्रजीका ही निवास सर्वत्र है, कहीं विष्णुरूपसे, कहीं महाविष्णुरूपसे, कहीं श्रीमन्नारायणरूपसे, कहीं अपने इसी द्विभुजरूपसे इत्यादि असंख्य रूपोंसे वे सर्वत्र हैं। इसीसे तो जब देवताओंमेंसे कोई वैकुण्ठ और कोई क्षीरसागरका नाम लेने लगे तब भगवान् शङ्करजीने उनसे कहा—*'कहहु तो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।'*

* 'अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ'—(का०)।

इन सब लोकोंका बखान भी ऋषियोंने किया है। कोई ऐसा नहीं है जिसका बखान न हुआ हो। सम्पादककी समझमें विवादकी यहाँ कोई बात नहीं है। दूसरे कोई झगड़ा सीधे अर्थमें इससे भी नहीं रहता कि बखान करनेमें 'वैकुण्ठ' शब्द दिया और अयोध्याका माहात्म्य कहनेमें ***'मम धामदा'*** कहा, वैकुण्ठ न कहा। ***'मम धाम'*** का उपासक अपने अनुकूल अर्थ कर लें। वैकुण्ठ नाम क्षीरसागरवाले लोक, विष्णुलोक, महाविष्णुलोक इत्यादि कई लोकोंका सुना जाता है, एकहीका नहीं।

भगवान्‌के रहस्यको कौन जान सकता है? वेदतक नहीं जानते तब हम तृणसे भी क्षुद्रबुद्धि क्या जान सकें? अधिकारानुसार जनाया जाता है। हमारी समझमें इस स्थानपर एक तो कोई साकेत आदिकी बातका विवाद ही व्यर्थ जान पड़ता है, दूसरे, यह शंका ऐसी ही जान पड़ती है जैसे कि घट शब्द कहनेपर कहे कि कलश नहीं कहा गया, क्योंकि **'साकेतस्तु अयोध्यायाम्।'** तिलककारोंके भाव अब दिये जाते हैं—

मा० हं०—कह नहीं सकते कि इस प्रेमकी स्फूर्ति गोसाईंजीको सूरदासजीके नीचे दिये हुए पदसे हुई है या केवल स्वयंसे ही।

'काह करौं बैकुंठ महँ जाय

वहँ नहिं नंद, वहाँ नहिं गोकुल, नहिं वहँ कदम की छाँह।

वहँ नहिं जल जमुनाको निर्मल वहँ नहिं ग्वाल बाल अरु गाय****** ॥'***

चाहे जो कुछ हो पर यह बात तो निर्विवाद है कि इस वर्णनसे गोसाईंजीने हमें यह शिक्षा दी है कि यह मातृभूमि हमें वैकुण्ठसे भी प्रिय लगनी चाहिये। **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'**

मा० म०—***'सब वैकुंठै जानिए कारण रमा पयोधि। जानि महा बैकुंठ पुनि बिरिजा परको सोध॥'*** (७९) ***'गोलोकादिक सर्वकी पुरी अंब है येह। मूरख चिहुँकेंगे सही रसिक करेंगे नेह॥'*** (८०) मूलमें कहा है कि यद्यपि वेद-पुराण सब वैकुण्ठोंका वर्णन करता है। यहाँ सब वैकुण्ठ कहनेका भाव यह है कि वैकुण्ठ पाँच हैं—१ रमा-वैकुण्ठ विष्णुलोक जिसमें लक्ष्मीसहित विष्णुभगवान् निवास करते हैं। २ पयोधि-वैकुण्ठ क्षीरसागर। ३ कारण-वैकुण्ठ। ४ महावैकुण्ठ। ५ बिरजापार-वैकुण्ठ। इन सब वैकुण्ठोंमें श्रेष्ठ गोलोक है और इन सब लोकोंको उत्पन्न करनेवाली जननी अयोध्यापुरी है।

शीला—श्रीअवध और क्षीरसागर दो स्थानोंमें भगवान् पूर्ण कलासे बसते हैं और वैकुण्ठ विष्णुजी त्रिदेवमय जानो। अयोध्या जन्मभूमि है इससे प्रिय है। वैकुण्ठ विहार-स्थान है।

श्रीनंगे परमहंसजी—वैकुण्ठ श्रीरामजीकी नित्य विभूति है और अवध लीलाविभूति है। लीलाचरित रामजीको अति प्रिय है इसलिये श्रीअवध विशेष प्रिय है।

पं०—वैकुण्ठसे अयोध्याकी महिमा अधिक कहनेका आशय यह है कि—(क) ग्रन्थकारोंकी रीति है कि जिसकी प्रशंसा करना चाहते हैं उसके प्रसङ्गमें औरोंकी न्यूनता कह जाते हैं। वा, (ख)—वैकुण्ठमें तो चतुर्भुजका निवास है, द्विभुजरूप रघुनाथजी तो अयोध्याजीमें ही प्रकट होते हैं। इस विचारसे अवधको प्यारा कहा। (ग)—वैकुण्ठमें जो विष्णुजीके निवासका स्थान है उसका नाम भी अयोध्या है। इस प्रकार वैकुण्ठरूपी सब नगरसे अपने निवासकी मन्दिररूपी अयोध्या प्यारी कही।

रा० प० प०—अवध सबकी अवधि है। औरसे अवध-प्राप्ति कठिन है। यह बड़े सुकृतोंसे मिलनेवाली है।

रा० प्र०—समस्त वैकुण्ठोंकी महिमा वेद-पुराणादिमें वर्णित है, पर वह भी मुझे अवधसरिस प्रिय नहीं है, इस कथनका भाव कि वे सब गुणातीत नहीं हैं; यह प्रसंग कोई-कोई ही जानते हैं।

करु०—'श्रीअवध श्रीरामजन्मभूमि है, यहाँ श्रीरामजीने नरलीला की है इससे यह प्रिय है' ऐसा अर्थ सिद्ध करनेमें आगेके श्रीमुखवचन ***'यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ'*** से विरोध होता है। जन्मभूमि होना तो सब जानते ही हैं तब ***'कोउ कोऊ'*** विशेष पद कहनेकी क्या आवश्यकता थी? यही विशेष वचन गीतामें है, यथा—**'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥'** जिसपर श्रीरामचन्द्रजी अति कृपा करते हैं उसको श्रीमुखसे अपना तत्त्व बताते हैं। यहाँ वे अति कृपा करके धामतत्त्व सबको जनाते हैं।

अर्थ यह है कि—'यद्यपि सब वैकुण्ठोंका बखान वेद-पुराणोंने किया है और उनके द्वारा सब जगत् जानता है, पर उन सब वैकुण्ठोंमें श्रीअयोध्या हमको बहुत प्रिय है। मेरी पुरी सबकी जन्मभूमि है।'

करु०—१०८ वैकुण्ठ भूपर हैं, पाँच वैकुण्ठ और हैं—१—क्षीरसागर वैकुण्ठ। जब श्रीमन्नारायण निद्राकी प्रेरणा करते हैं तब ब्रह्मा निद्रावश स्वप्नावस्थाको प्राप्त होते हैं और तब श्रीमन्नारायणकी इच्छासे जगत् जलार्णव होता है, जिसे नैमित्त्य प्रलय कहते हैं—इसका कारण क्षीरसागर वैकुण्ठ है। २—'रमा-वैकुण्ठ' जहाँ सनकादिने जय-विजयको शाप दिया था। ३—कारण-वैकुण्ठ जहाँ महाप्रलयमें प्रकृति-पुरुष साम्यताको प्राप्त होते हैं, जहाँ तीनों गुण और पाँचों तत्त्व सम हैं जब वही पुरुष महाविष्णु ईक्ष्णा करते हैं तब फिर जगत् वैसा ही हो जाता है ('तब वैसे ही जगत्को होते हैं')। ४—वैकुण्ठ महाभगवान् चतुर्व्यूह वासुदेव पुरुष प्रकृतिपर जहाँ विराजमान हैं। ५—पदवैकुण्ठ। यह विरजापार है। इसीको पूर्ण अयोध्या कहा है। इस प्रकार सब वैकुण्ठोंका मूल श्रीअयोध्या है। प्रमाण—भार्गवपुराण—नारायणवाक्य, यथा—'**एवमेव पुरा ब्रह्म वैकुण्ठनगरे हरिः। सर्वेश्वरी जगन्माता पप्रच्छ कमलालया। त्रिपाद्विभूतिवैकुण्ठविरजायाः परे तटे। या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेनावृता पुरी॥ वैकुण्ठाः पञ्च विख्याताः क्षीराब्धिं परमार्कजम्। महाकारणवैकुण्ठं पञ्चमं वीरजापरम्॥ नित्यं दिव्यमनेकभोगविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरं सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी॥**' (महारामायण) पुनः, वेद कहते हैं—'**अयोध्यापुरी सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति**' इति। (अथर्वणवेद-उत्तरार्द्ध)

प० प० प्र०—त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्में अध्याय ६-७ में सात वैकुण्ठोंका विस्तृत वर्णन है। पाद्विभूति वैकुण्ठपुर, विष्वक्सेन वैकुण्ठपुर, ब्रह्मविद्या वैकुण्ठपुर, श्रीतुलसी वैकुण्ठपुर, बोधानन्द वैकुण्ठपुर और सुदर्शन वैकुण्ठपुर। सुदर्शन वैकुण्ठपुरके भी ऊपर अद्वैतस्थान है, जिसको त्रिपाद्विभूतिवैकुण्ठ स्थान कहते हैं, यही परमकैवल्य है।

वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी—'वैकुण्ठ यदि विष्णुलोक ही है तो '*जद्यपि सब बैकुंठ बखाना*' क्यों कहा? महावैकुण्ठ, साकेतादिको क्यों न कहा? इसमें क्या रहस्य है? या, वैकुण्ठ सबको ही कहा है? यदि ऐसा है तो प्रमाण क्या है?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वैकुण्ठसे यहाँ नित्य विभूतिस्थ वा लीलाविभूतिस्थ क्षीरसागर इत्यादि सब धामोंका अर्थ है। इन सबसे जन्मभूमि अवध अधिक प्रिय होनेका कारण यह है कि यहाँ ही सरकारके आशैरण्योपयोगी दिव्य कल्याणगुणोंका विकास होता है। कुछ गुणोंके नाम—

(१) आसरेण सौकर्य्यापादकगुण—वात्सल्य (शरणके दोषोंको भोग्य मानकर स्वीकार करना), स्वामित्व (उभयविभूतिनाथ), सौशील्य (महान् होकर भी मन्द जीवोंके साथ निरभिमान बर्ताव), सौलभ्य।

(२) आश्रित कार्योत्पादक गुण—ज्ञान (दोषोंको जानकर भुला देना), शक्ति (बद्ध जीवोंको नित्यमुक्तोंके बराबर कर देना), पूर्त्ति (अयाचक कर देना), प्राप्ति (विश्लेषरहित संश्लेष)।

(३) उभयानुग्राहक—दया (यह सब गुणोंको सहायता पहुँचानेवाला है)।

श्रीरामनृसिंहादि सभीके लोक अलग-अलग हैं,—विशेष १५ (३) में देखिये।

बैजनाथजी—श्रीरघुनाथजी कहते हैं कि सुर-मुनि आदि 'वैकुण्ठको बड़ा करि माहात्म्य बखान करते हैं; क्योंकि वेद-पुराणादिकोंसे विदित है, इससे सभी जानते हैं तथा लोकपालन-शक्ति विष्णुमें है सो वे वैकुण्ठमें रहते हैं, इसको सब जानते हैं। राजदरबार राजाको विशेष प्रिय नहीं होता, क्योंकि वह परिश्रमका स्थान है। इससे क्षणमात्र विशेष कार्य लगनेपर वहाँ आते हैं। सब काम नायब, दीवान आदि सदा करते हैं। जो मन्दिर राजाका खास निवासस्थान है वह उसे विशेष प्रिय होता है, जो राजाके समीपी होते हैं वे ही उसको जानते हैं। इसी तरह अयोध्या नित्य विहारस्थान है, इसीसे रघुनाथजी कहते हैं कि इसके समान मुझे वह वैकुण्ठ भी प्रिय नहीं है, यह प्रसंग जो शिवसंहितादिमें वर्णित है वह मेरा परमस्नेही ही जानता है।

गौड़जी—साकेत-गोलोकादि वैकुण्ठके अन्तर्गत हैं। वैकुण्ठ कहनेसे उसके अन्तर्गत साकेत-गोलोकादि भी कह दिये गये। वैकुण्ठ प्रिय है पर अवध अति प्रिय है, क्योंकि यह लीलास्थल है, यहाँ रहकर

१२ हजार वर्ष नरक्रीड़ा करते हैं, वैकुण्ठमें नित्य निवास है परन्तु क्रीड़ास्थल यहीं है, खेलनेकी जगह और साथके खेलाड़ी भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय हैं और खेलाड़ियोंको भी भगवान्‌का क्रीड़ास्थल और भगवान् दोनों ही अत्यन्त प्यारे हैं। भगवान् जब अपने नित्य धामको जाने लगते हैं तब साथके खेलाड़ियोंको लेते जाते हैं और जब आने लगते हैं तब खेलाड़ी भी नित्य धाममें नहीं रहते, साथ ही चले आते हैं—*'निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥'* (कि० २६) इसलिये आगे चलकर कहते हैं—*'अति प्रिय मोहिं इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥'* यह मेरा धाम देनेवाली सुखराशि पुरी है। भगवान्‌को लीला अत्यन्त प्रिय है, इसीलिये तो **'एकोऽहं बहु स्याम्'** एकसे अनेक होनेकी भगवान्‌में प्रवृत्ति है और अनन्त विश्वोंकी क्षणभरमें रचना और दूसरे क्षणमें उसका महाप्रलय भगवान्‌की सहज लीला है, इसमें अनन्तकाल और अनन्त देशमें सृष्टिका विस्तार होता है। जिसमें मर्यादापुरुषोत्तमका एकमात्र आदर्श परतमके रामावतारमें ही हुआ करता है। यह उसकी सर्वोत्तम लीला है और आदर्श अभिनय है फिर इस अभिनयकी रंगभूमि उस मर्यादापुरुषोत्तमकी जन्मभूमि उसे सर्वाधिक प्रिय क्यों न हो? यह याद रहे कि उनकी प्यारी अयोध्या हर विश्वके हर ब्रह्माण्डमें है और मर्यादापुरुषोत्तमकी वे लीलाएँ निरन्तर किसी-न-किसी अयोध्यामें होती ही रहती हैं। इस तरह ये लीलाएँ भी नित्य हैं और प्रत्येक अयोध्या भी अपेक्षाकृत नित्य है।

पं० रा० कु०—*'यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।'* कौन जानते हैं? जिनके हृदयमें श्रीरामजीका निवास है, यथा—*'अवध प्रभाउ जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनु पानी॥'*—[☞भाव कि अन्य किसी भी रूपके हृदयमें वाससे अवध और अवधका प्रभाव नहीं जाना जा सकता, ध्येय और ज्ञेय एक होने चाहिये।]

☞यहाँतक ऐश्वर्य-रीतिसे श्रीअयोध्याजीको प्रिय कहा।

नोट—☞भाव कि वैकुण्ठको सब जानते हैं पर इस बातको न सब जानते हैं, न सबने बखान किया है। न जाननेका कारण कि रामरहस्य परमगोपनीय है। शिवजीने पार्वतीजीतकको न बताया था। जैसे रामभक्ति असंख्योंमें किसी एकको मिलती है वैसे ही यह प्रसंग भी करोड़ोंमें कोई-कोई ही रामकृपासे जान पाता है।

पं० रा० व० श०—*'यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ'* इति। भाव कि यह गोप्य रहस्य है। इसका रहस्य सबकी समझमें नहीं आ सकता। जो समस्त वेद-शास्त्रोंके निचोड़के ज्ञाता हैं, जिनपर हमारी कृपा है और जिसके हृदयमें मैं धनुष-बाण धारण करके निवास करता हूँ वही जानता है कि इससे बढ़कर दूसरी पुरी नहीं है और यही मुझको अति प्रिय है। वेदोंमें गुप्तरूपसे यह रहस्य है पर रामकृपासे जाना जाता है। मन्त्रभागमें यह वाक्य है—यद्यथा—**'देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः। यो वै तां ब्रह्मणोऽमृतेनावृतं पुरीं वेद तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुःकीर्तिं श्रियं ददुः।'** यह सामवेदकी तैत्तिरीय ब्राह्मणकी श्रुति है।

वेद कहते हैं कि जितने दिव्य-ज्ञानवाले मुक्त जीव हैं उनका वह पुर है।

नोट—१ अवधपुरी भगवान्‌को मन, वचन और कर्म तीनोंसे प्रिय है। यह बात ग्रन्थमें प्रमाण कर दिखायी है। यथा—*'चले हृदय अवधहि सिरु नाई'* (अ० ८२), *'जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं'* (अ० १४०), *'सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल प्रनाम। सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषत राम'* —(लं० १२०),*'पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥'*—(लंका० १२०। ९)। और यहाँ तो प्रत्यक्ष है ही।

☞२—अवधपुरीके समान वैकुण्ठ भी प्रिय नहीं है, यह बात केवल वचनसे ही नहीं, वरन् कर्मसे भगवान् रामचन्द्रजीने दिखायी है। १२ हजार वर्षसे अधिक इस पुरीमें साक्षात् रहे। यह बात किसी भी अन्य अवतारमें नहीं हुई। किसी भी पुरीमें ऐसा दीर्घनिवास किसी अवतारका नहीं हुआ। सभी अवतार कार्य कर-करके तुरन्त अपनी पुरीको छोड़कर चले गये।

वि० त्रि०—*'जानै कोउ कोऊ'* कहनेसे यह ध्वनि निकलती है कि पूज्यपाद कवि भी उस प्रसङ्गके जाननेवाले हैं, कहा भी है कि *'अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी॥'* अतः वैकुण्ठसे अधिक कहनेका कारण भी कविको कहना चाहिये और उन्होंने कहा भी है। *'अवध'* का और रामजीका वही सम्बन्ध है जो सूर्य और दिनमें सम्बन्ध है, सूर्यस्थानीय रामजी हैं और दिनस्थानीय अवध है। जहाँ-जहाँ सूर्यका साक्षात्कार है, वहाँ-वहाँ दिन है। सबका निर्गलितार्थ यह है कि अवध राम-साक्षात्काररूप है। जिस भू-खण्डमें निवास करनेसे सरकारका साक्षात्कार होता है, उसे भी अवध कहते हैं, यथा—*'रघुपति पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ॥ पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। राम भगति उपजिहि उर तोरे॥'* यथा—*'कवनेहु जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥'* उसके साक्षात्कारका मार्ग निर्गल हो जाता है। वैकुण्ठ अत्युत्तम लोक है, पर उसे छोड़कर सरकार मर्त्यधाममें लीलाके लिये चले आते हैं, पर अवधको नहीं छोड़ सकते। यथा—*'अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥'* (२। ७४। ३)

प० प० प्र०—मर्म यह है कि (१) ऊपरके वैकुण्ठोंमें भगवान् लीला नहीं कर पाते। (२) पुरीका प्रभाव यह है कि रामभक्ति उत्पन्न होती है, कोई साधन नहीं करना पड़ता। (३) अवधके जीव सदेह वैकुण्ठपुरी रामधाममें जा सकते हैं। जैसे *'राम तें अधिक राम कर दासा',* वैसे ही अयोध्या वैकुण्ठोंसे भी अधिक है। पर *'अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी॥'*

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥ ५॥
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर* पावहिं बासा॥ ६॥

अर्थ—यह सुहावनी मेरी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशामें पावनी (स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाली) श्रीसरयूजी बहती हैं॥ ५॥ जिसमें स्नान करनेसे बिना (योग, यज्ञ, जप, तपादिरूपी) परिश्रम ही मनुष्य मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पाते हैं†॥ ६॥

टिप्पणी—१ अब अवधपुरीके प्रिय होनेका हेतु कहते हैं। एक तो यह कि यह मेरी जन्मभूमि है, जन्मभूमि सबको प्रिय है, यह मेरी पुरी है और मेरे नामसे विख्यात है। यथा—*'पहुँचे दूत रामपुर पावन॥'* (१। २९०। १) *'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥'* (१। २९६। ५) *'जेहिं बिधि राम नगर निज आये॥'* (६८। ५) इत्यादि। अपना पुर प्रिय होता ही है। दूसरे, यह कि यह पुरी कुछ जन्म-सम्बन्धसे ही प्रिय नहीं है, किंतु यह पुरी लोकोत्तर *'सुहावनि'* है, इसकी शोभाको शेषादिक नहीं वर्णन कर सकते, यथा—*'पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥ तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥'* (९। ८-९) यह ऐसी सुन्दर पुरी होनेसे हमको प्रिय है। तीसरे, यह कि यह ऐसी पावनी है कि इसके एक देशमें (स्थित) सरयू ही सामीप्य मुक्ति दे देती है। चौथे, यह कि यहाँके वासी अतिप्रिय हैं और पाँचवें, यह कि यह *'मम धामदा पुरी सुखरासी'* है—(खर्रा)

२ *'उत्तर दिसि बह सरजू पावनि'* इति। श्रीसरयूजी अयोध्यापुरीका अङ्ग हैं। दोनोंका नित्य सम्बन्ध है। श्रीसरयूजी अयोध्याके ही निमित्त आयीं। इसीसे जहाँ अयोध्यापुरीका वर्णन करते हैं वहाँ सरयूजीका भी वर्णन करते हैं। यथा—*'बंदौ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलिकलुष नसावनि॥'* (१। १६। १) *'नदी*

---

* पावहिं नर (का०)।

† १ पां०—इस अर्थमें यह संदेह होता है कि जो वहाँ जाकर स्नान न करेगा तो उसे थोड़ा-बहुत श्रम करना पड़ेगा। इसलिये ऐसा अर्थ करें तो अति विशेषता है कि—'जिस सरयूमें श्रमरहित स्नान करनेसे मनुष्य मेरे समीप वास पाते हैं।' 'श्रमरहित स्नान वह है कि जिसमें अपने हितुओं, प्रेमियों, सम्बन्धियोंके नामसे बुड़की लगाते हैं, जिससे इसका फल उनको प्राप्त हो जाता है।' २ बै०—'जन्मभूमि मम पुरी'='जन्मभूमि' यह अयोध्या जो प्रकृति-मण्डलमें है। 'मम पुरी'=नित्य-विहारवाली अयोध्या जो साकेतलोकमें है। ये दोनों एक ही हैं, देखनेमात्रमें दो हैं; अतः 'जन्मभूमि ममपुरी' कहा।

पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा बिमल मति॥ रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥' (१। ३५)

☞ यहाँतक व्यवहार-रीतिसे अवधका प्रियत्व कहा।

३ *'जा मज्जन ते·········'* इति। *'बिनहि प्रयासा'* कहनेका भाव कि सामीप्यमुक्तिकी प्राप्तिमें बड़ा प्रयास है, सो मज्जनमात्रसे बिना प्रयास ही लोग हमारे समीप वास पाते हैं। बहुत धर्म करनेसे जो सामीप्यमुक्ति मिलती है वह सरयू-स्नानसे ही मिल जाती है, इस कथनका आशय यह है कि सब धर्मोंके फलसे सरयू-स्नानका फल भारी है।

नोट—१ *'जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा'* का भाव कि इसमें स्नान करके कहीं रहे, पवित्रतासे रहे और माहात्म्य मनमें स्मरण रखे तो (भी) रामधामकी प्राप्ति होती है। (मयूख)। सरयू-मज्जनका विधान यथा—*'मज्जहिं सज्जनबृंद बहु पावन सरजू नीर। जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥'* (१। ३४) (रा० शं०) सरयूजीकी पावनताके सम्बन्धमें चोरोंकी मुक्तिकी कथा सत्योपाख्यान अध्याय ३४, ३५ में प्रसिद्ध है। (वै०) मिलान कीजिये—**'जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्या मनुराजधानीम्॥'** (१३। ६१) **तरङ्गमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि। तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजान्नास्ति शरीरबन्धः॥'** (रघुवंश १३। ५८) अर्थात् अयोध्या-राजधानीमें जिसके तटपर यज्ञस्तम्भ गाड़कर इक्ष्वाकुवंशियोंने अनेक यज्ञ करके जिसके जलको अधिक पवित्र कर दिया है, यह वह सरयू विराज रही है। इसमें स्नानमात्रसे ही, बिना तत्त्वज्ञान हुए भी, शरीर त्याग करनेपर पुनः शरीर नहीं धारण करना पड़ता।

नोट—२ यहाँ *'मम समीप नर पावहिं बासा'* कहते हैं। इसके कहनेवाले श्रीरामजी हैं। अतः *'मम समीप'* का अर्थ है रामसमीप। जहाँ श्रीरामजीका नित्य निवास है वहाँ।

पं० रा० व० श०—१ जिससे सब प्राणी उत्पन्न और जिसमें सब लीन होते हैं, जो उद्भव-स्थिति-संहार करनेवाला है, ऐसे मुझ निरवधि पुरुषको अवधि अर्थात् जन्म देनेवाली तथा निरुपम पुरुषकी अवधि होनेसे 'अवध' नाम है। और इसीसे मुझे प्रिय है। २—सरयू ब्रह्मद्रव है, ब्रह्मके नेत्रोंका करुणाजल है अतएव चिन्मय है, ब्रह्मतत्त्व है, निराकाररूप ब्रह्म है। ब्रह्माजीने मानसपर निर्माण कर उसमें इस चिन्मय जलको रखा था, सरसे निकलनेसे सरयू नाम हुआ।—(कथा बा० ३८ (९) में देखो)। पुनः, स्मरणमात्रसे सब पाप नाश करती हैं अतः सरयू नाम है, यथा—**'सरन्ति पापानि अनया इति सरयूः'**

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥ ७॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो* राम बखानी॥ ८॥

अर्थ—यहाँके निवास करनेवाले मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, यह पुरी सुखकी राशि है और मेरे धाम (स्वरूप, लोक, तेज अर्थात् सालोक्य-सारूप्य-सायुज्य मुक्ति) की देनेवाली है॥ ७॥ सब वानर प्रभुकी वाणी सुनकर प्रसन्न हुए—जिस अवधका श्रीरामजीने बखान किया, वह धन्य है॥ ८॥

नोट—श्रीअवधपुरीके सम्बन्धमें जो श्रीमुखवचन हैं कि *'जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना। अवध पुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥'* और *'अति प्रिय मोहि इहाँके बासी'* इतनामात्र ही इस पुरीको समस्त पुरियोंमें शिरोमणि, अखिल मोक्षदायक पुरियोंका मस्तक कहलानेका जो गौरव प्राप्त है उसके लिये पर्याप्त सबूत है।

श्रीनामके जापकों, लीलाके देखनेवालों तथा रूपके दर्शकोंको *'अति प्रिय'* नहीं कहा। परंतु धाममें निवास करनेवालोंको कहते हैं कि *'अति प्रिय मोहि'*—वास्तवमें धामकी जैसी उदारता अपर तीनोंमें नहीं है। श्रीस्वामी रामप्रसादशरणजी लिखते हैं—'सुग्रीवादि सब श्रीरामजीके साथ रहनेपर भी वानरके वानर ही रहे; परन्तु धाममें आते ही *'हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥'* और नाम, रूप

* जेहि—(का०)

और लीलाका लोभ केवल जाग्रत्-अवस्थामें है, स्वप्न-सुषुप्तिमें नहीं; परन्तु धामनिवासी स्वप्नादिमें भी धामहीमें प्राप्त है। नाम यदि न जपे, रूपका दर्शन न हो और लीला न देखे तो कुछ लाभ नहीं। धामका वास करनेवाला सब अवस्थामें कोई भी कर्म न करनेपर भी धामसे लाभ उठाता ही है।

टिप्पणी—१ (क) *'अति प्रिय'* का भाव कि जैसे हमको वैकुण्ठ प्रिय है और अयोध्या अति प्रिय है, वैसे ही वैकुण्ठवासी प्रिय हैं और अवधवासी अति प्रिय हैं। (ख) ***'अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी'*** यह अपना स्वाभाविक अवधवासियोंके विषयमें प्रीतिरूपी सम्बन्ध सूचित किया। (खर्रा)

नोट—१ *'अति प्रिय'* से जनाया कि ये जगत्-वन्दनीय हैं। इसीसे ग्रन्थकारने भी वन्दना की है—***'बंदौ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥'*** रा० प्र० कार लिखते हैं कि बहुत सुकृत-साधनका फल अवधवासकी प्राप्ति है; अतः अति प्रिय कहा।

श्री १०८ युगलानन्यशरणजी महाराज साकेतवासी (लक्ष्मणकिला, श्रीअयोध्याजी) श्रीमुखसे कहते थे कि शास्त्रमें अवधवासी चार प्रकारके कहे गये हैं—'अव्वल दर्जेके तो वे हैं जिनका जन्म श्रीअयोध्याजीमें है, क्योंकि जहाँ श्रीब्रह्मका अवतार वा जन्म हुआ वहाँ उनका भी जन्म है। वे चाहे जहाँ रहें, अपनी जन्मभूमि तो श्रीअवधजीको ही मानेंगे। जो कोई पूछेगा तो श्रीअवधजीमें ही अपना जन्म बतावेंगे और यह भी नियम है ही कि अपनी जन्मभूमिमें अवश्य अधिक स्नेह होता है। फारसीमें कहानी है कि ***'हुब्बुल-वतन अज़ मुल्के सुलेमां खुशतर।'*** यथार्थ ही अपनी जन्मभूमिमें परम प्रेम होता है। इसके आगे सुलेमां (जो पक्षी आदि सभीका बादशाह था) का मुल्क भी जहाँ सर्वसुख प्राप्त थे, इतना प्रिय नहीं लगता। दूसरी श्रेणीमें वे हैं जिनका जन्म तो और जगह हुआ, किन्तु जिन्होंने सब छोड़कर श्रीअवधवास नियमसे कर लिया। ये अपनी जन्मभूमि वहीं मानेंगे और कहेंगे जहाँके वह प्रथम रहनेवाले थे और बातचीतमें बहुधा कह उठेंगे कि हमारी जन्मभूमिमें, हमारी तरफ, ऐसा दस्तूर है। तीसरे दर्जे (श्रेणी) के वे हैं जो नियमसे निवास नहीं रखते, आते-जाते रहते हैं पर सालभरका बीच नहीं पड़ता। चौथे दर्जे (श्रेणी) में वे हैं (जो) कि श्रीअवधजीमें आ नहीं सकते मगर मन उनका यहाँ ही लगा रहता है। श्रीअयोध्या महारानी उनको भी श्रीअवधवासियोंमें अति दयालुतासे कृतार्थ करनेमें गिन लेती हैं।'—(किला-निवासी श्री ५ भगवानसहायजीकी हस्तलिखित जीवनीसे उद्धृत)।

'मम धामदा पुरी·········' इति। ***'इहाँ के बासी'*** कहकर ***'मम धामदा पुरी'*** कहनेका भाव कि यहाँ वास करनेसे अयोध्यापुरी हमारा धाम देती है। अर्थात् वाससे सालोक्यमुक्ति मिलती है और सरयूस्नानसे सामीप्यमुक्ति मिलती है। पुनः, धाम=तेज—'**धाम तेजो गृहं धाम।**' (इत्यमरः) अर्थात् वास करनेसे हमारे तेजमें मिला देती हैं। तात्पर्य कि सायुज्यमुक्ति प्राप्त कर देती है। पुनः धाम अर्थात् शरीर देती है। अर्थात् हमारे रूपको प्राप्त होती है—यह सारूप्यमुक्ति है। ☞इस प्रकार श्रीअवधवाससे चारों मुक्तियोंकी प्राप्ति सहजहीमें हो जाती है, यह दिखाया।—[पुनः '**मम धामदा**' और '**सुखरासी**' से परलोक और लोक दोनों सुख देनेवाली जनाया। (वै०) पुनः, '**मम धामदा**'=मुझको और मेरे धाम साकेतकी देनेवाली। मेरी प्राप्ति करा देती है। (मा० शं०, करु०) *(घ) सुखराशि कहनेका भाव कि यह पुरी दोनों लोकोंमें सुख देती है। वास करनेसे इस लोकमें सब सुख देती है और अन्तमें हमारा धाम देती है।†—भगवान् रामजीको

---

* पां० 'मम धामदा पुरी' का मुख्य भाव यह है कि यह पुरी मुझे शरीर देनेवाली अर्थात् मेरी जन्मभूमि है।—(पर जन्मभूमि होना तो प्रभुने स्वयं ही कहा है, उसको फिर क्यों दूसरे शब्दोंमें दोहराते। हाँ, यदि कहते कि मेरा स्वरूप मेरा-सा शरीर देनेवाली है तो भी ठीक होता, क्योंकि धाममें शरीर छूटनेपर सारूप्यता तो मिलती है ही)। २—कोई-कोई टीकाकार 'मम धामदा' को दीपदेहली मानते हैं। अर्थात् अवधवासी अत्यन्त प्रिय हैं, क्योंकि वे मेरे धामको देते हैं, उनकी सेवासे तथा पुरीके वाससे नित्यधामकी प्राप्ति कही।

† रा० च० मिश्र—'सुखरासी' का भाव कि जब इससे अधिक सुख कहीं हो तब तो यहाँके वासी उसकी इच्छा करें, जब है ही नहीं तब इच्छा भी कब होने लगी।

'सुखराशि' विशेषण बहुत जगह दिया गया है और यहाँ धामको भी वही विशेषण दिया। इस तरह जनाया कि यह पुरी भी ब्रह्मसच्चिदानन्द-स्वरूपिणी है।

* *'मम धामदा पुरी' 'मम समीप नर पावहिं बासा।'* *

इसपर यह प्रश्न होता है कि 'वह धाम कहाँ है और श्रीरामजीकी समीपता कहाँ प्राप्त होगी?' यदि कहनेवाले (श्रीरामजी) का कोई अपना धाम है तब दूसरे रूपका धाम कहनेवालेका धाम नहीं हो सकता। और, यदि कहनेवालेका कोई अपना धाम नहीं है तब देखना होगा कि कहनेवालेका इससे क्या तात्पर्य हो सकता है।

श्रुतियों, पुराणों, संहिताओंसे श्रीरामजीका धाम 'अयोध्या' प्रमाणसिद्ध है।

ब्रह्मचारिश्रीभगवदाचार्य देवरत्नजी 'अथर्ववेदमें श्रीअयोध्या' शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि—'अथर्ववेद' (संहिताभाग) दशमकाण्ड, प्रथम अनुवाक, द्वितीय सूक्तके २८ वें मन्त्रके उत्तरार्धसे श्रीअयोध्याजीका प्रकरण आरम्भ होता है।

'पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते'॥ २८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृते नावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥

न वैतं चक्षुर्जहाति न प्राणोजरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यक्षरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसासमपरीवृताम्। पुरं हिरण्मयीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥ ३३॥

इन मन्त्रोंका अर्थ देकर अन्तमें वे लिखते हैं कि ☞अथर्ववेदका प्रथम अनुवाक यहाँ ही पूर्ण हो जाता है। इस अनुवाकके अन्तमें इन साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अत्यन्त स्पष्टरूपमें श्रीअयोध्याजीका वर्णन किया गया है। इन मन्त्रोंके शब्दोंमें व्याख्याताओंको अपनी ओरसे कुछ मिलानेकी आवश्यकता ही नहीं है। श्रीअयोध्याजीके अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरीका इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्रसंहिताओंमें होनेका मुझे ध्यान नहीं है।'—(श्रीमद्रामप्रसादग्रन्थमाला मणि ५ से संक्षेपसे उद्धृत)।

२—रामतापनीयोपनिषद्की श्रुतियाँ और नारदपञ्चरात्रादि ग्रन्थ तो विशेषरूपसे प्रमाण हैं ही।

३—विशेष दोहा १५ (४) और दोहा ३ (४) में देखिये।

जो श्रीमन्नारायणको अवतारी मानते हैं उन्हें भी यह मान्य है कि साकेतमें भगवान्‌का नित्य परात्पर द्विभुज निराकार रूप ही है, अतः यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीरामजीका धाम साकेत ही है, चाहे वे राम परात्पर परब्रह्म अशेषकारणोंके भी कारण श्रीमन्नारायणसे भी परे हों और चाहे वे स्वयं नारायण ही द्विभुजधारी हों—इस विवादसे कोई सरोकार यहाँ नहीं है।

☞यहाँ *'मम धामदा पुरी'* के वक्ता श्रीरामजी हैं। अतः *'मम धामदा'* का अर्थ 'रामधामदा' निश्चय हुआ। रामधामको ही रघुपतिपुरी भी कविने आगे कहा है। अतः *'मम धाम'* से *'रघुपतिपुर' 'रामधाम'* तात्पर्य है यथा—*'सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं॥'* (१५। ४) रहस्यकी बातें अत्यन्त गोपनीय हैं, सर्वत्र स्पष्ट नहीं कही जातीं। इसीसे भगवान् कहते हैं कि *'यह रहस्य जानइ कोउ कोऊ।'* *'रघुपतिपुर'* और *'रामधाम'* जिसके आचार्यने जो जिसको बताया हो उसके लिये वही है। श्रुतियों, स्मृतियोंमें रघुपतिपुर वा रामधामको साकेत, अयोध्या, अपराजिता, सन्तानक इत्यादि कहा गया है। —दोहा ४ (४) देखो। भगवान्‌के सभी लोक हैं। अपनी-अपनी भावनानुसार उपासक लोक और प्रभुको पाते हैं—**'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना'** इति (श्रुति)। इसलिये जिसको जो श्रीरामजीका धाम रुचे वही उसके लिये ठीक है।—*'जिन्हके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी॥'* एक श्रीराम द्विभुज भावनानुसार पृथक्-पृथक् रूपके देख पड़े। १। २४१। (१)—२४२ देखिये।

मा० म०—'*मम धामदा पुरी सुखरासी*' का भाव कि सब वैकुण्ठोंके वासी मुझे प्रिय हैं परन्तु अवधवासी अत्यन्त प्रिय हैं। जो सरयू-स्नान करके पुरवासियोंका सेवन करे तो वे अपना-ऐसा बनाकर मेरे धाममें निवास देते हैं।—[☞ वैष्णवरत्न श्री १०८ रूपकलाजी फरमाते थे कि यहाँ घर बनानेवाले, किरायेपर घर लेनेवाले, वृक्ष लगानेवाले भी वासियोंमें ले लिये जाते हैं।]

टिप्पणी—२ '*हरषे सब कपि*.........' इति। यह उपसंहार है और '*कपिन्ह देखावत नगर मनोहर*' उपक्रम है। प्रभुकी वाणी सुनकर सब हर्षित हुए, इस कथनका भाव कि प्रभुकी वाणी सुननेसे सब भ्रम दूर होते हैं, यथा—'*सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥*' (३६। ३) तात्पर्य कि श्रीरामजीकी वाणी सुनकर वानरोंका भ्रम दूर हो गया, अयोध्याजीका प्रभाव देख पड़ा।

३—'*धन्य अवध जो राम बखानी*' इति। भाव कि सब वैकुण्ठका बखान करते हैं और श्रीरामजी अवधका बखान (प्रशंसा और वर्णन) करते हैं; इसीसे अवध धन्य है।

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरहु अति ताहु॥ ४॥

अर्थ—दयासागर भगवान् रामचन्द्रजीने सब लोगोंको आते देख नगरके पास प्रभुने विमानको प्रेरणा की (आज्ञा दी) तब वह पृथ्वीपर उतरा। उतरकर प्रभुने पुष्पकसे कहा कि तुम कुबेरजीके पास जाओ। श्रीरामजीकी प्रेरणासे वह चला, पर उसे हर्ष और अत्यन्त विरह है॥ ४॥

टिप्पणी—१ '*कृपासिंधु भगवान उतरेउ*.........' इति। नगरके निकट विमानको उतारा यह सोचकर कि नगरमें सबसे मिलते न बनेगा, सबको तकलीफ (कष्ट) होगी। इसीसे '*कृपासिंधु*' विशेषण दिया। [कृपासिंधु हैं, अतः पुरवासियोंको दौड़ते देख उतर पड़े। ऐसे ही श्रीकौसल्याजीने चित्रकूटको जाते हुए मार्गमें श्रीभरतजीसे कहा था कि सवार हो लो नहीं तो पुरवासी भी पैदल चलेंगे। यद्यपि वे शोकवश कृश हैं, पैदल चलने योग्य नहीं हैं। तब श्रीभरतजी सवार हो लिये थे। (रा० शं० श०)] जो धर्मसे युक्त हो सो भगवान् है, यथा—'**ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥**' [टिप्पणीमें यही श्लोक है। पर इसमें धर्म शब्द नहीं है। महारामायणमें तथा निरुक्तमें भगवान् शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—'**ऐश्वर्येण च धर्मेण यशसा च श्रियैव च। वैराग्यमोक्षषट्कोणैः संजातो भगवान् हरिः॥**' (४८। ६६) अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष (ज्ञान) इन छहोंके सहित जिन्होंने अवतार लिया है, वे ही भगवान् हैं। इसके अनुसार यह भाव ठीक सङ्गत हो जाता है। (मा० स०)] यहाँ प्रभुने धर्मका सँभाल किया कि माता, मन्त्री, गुरु, ब्राह्मण सब पैदल आते हैं, हमारा विमानपर बैठे रहना धर्म नहीं है; इसीसे '*भगवान*' कहा।—(साधारण दयावान् भी यह नहीं देख और सह सकता तब कृपासिंधु कृशतन राम-वियोगियोंका यह कष्ट कब देख सकते हैं।)

२ '*उतरि कहेउ*.........' इति। यथा—'**अवरुह्य तदा रामो विमानाग्र्यान्महीतलम्। अब्रवीत् पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह। अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम्॥**' (अ० रा० १४। ९८-९९) अर्थात् विमानश्रेष्ठपरसे उतरकर भूमिपर खड़े होकर श्रीरामजी पुष्पकसे बोले कि तुम कुबेरके पास जाओ और मेरी आज्ञासे सदैव उनकी आज्ञा पालन करना, उनकी सेवामें रहना।

शङ्का—विभीषणकी वस्तु श्रीरामजी कुबेरको क्यों देते हैं?

समाधान—मित्रभावसे विभीषणकी वस्तु अपनी जानकर दी, यथा—'*तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन मम तात*'—(लं०)। अथवा विभीषणजीने पुष्पक विमान भेंट किया है, नजरमें दिया है, यथा—'*लै पुष्पक प्रभु आगे राखा।*'

गौड़जी—पुष्पकविमान कुबेरका था, रावणका नहीं। रावण कुबेरसे छीन लाया था। कुबेरने उसे पुष्पककी भेंट नहीं की थी। अपने शत्रुपर विजय पाकर भेंटस्वरूप उसकी सम्पत्ति स्वीकार करनेमें कोई हर्ज नहीं है। किसी अपहृत सम्पत्तिके बदलेमें भी अपहरण करना अनुचित नहीं है। परन्तु किसीको बेकाबू करके उसकी सम्पत्ति छीन लेना राजाका काम नहीं है किंतु डाकू या लुटेरेका काम है। भगवान् रामचन्द्रजी नीतिके बड़े कठोर पालक हैं। विभीषणने बहुत कुछ भेंट करना चाहा, परन्तु विजयी होते हुए भी प्रभुने मन्त्री और आत्मीयताका भाव रखकर कहा।—*'तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन मम तात। भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥'* एक ही दिन बाकी रह गया था। उसी दिन पहुँचनेके लिये पुष्पकयान छोड़कर कोई उपाय न था। नवाभिषिक्त राजा विभीषणने सरकारकी सेवामें पुष्पकविमान पेश किया कि शीघ्र-से-शीघ्र भरतकी व्यथाको दूर करें। यह विभीषणकी भेंट थी। सेना और सखाओंसहित प्रभुको श्रीअयोध्यापुरीतक पहुँचा दिया। उसका उपयोग न करके तुरंत कुबेरको वापस कर देना भेंटका तिरस्कार होता, इसलिये उसका उपयोग आवश्यक था। जब पुष्पकका हरण हुआ था तब पुष्पकको कुबेरसे छूटनेका बड़ा दु:ख हुआ था। परन्तु यह जानकर कि किसी दिन भगवच्चरणोंको अपने ऊपर धारण करनेका सौभाग्य भी प्राप्त होगा, बहुत दिनोंसे पुष्पकको उस अवसरकी प्रतीक्षा थी। सौभाग्यसे वह अवसर अब आया। पुष्पकने हर्षपूर्वक यह सेवा की। लगभग ४०० मील प्रति घण्टेके हिसाबसे वह विमान चला। उसकी सेवा पूरे दिनभर भी नहीं रही। फिर भी इस अलभ्य अवसरकी प्राप्तिका उसे अति हर्ष हुआ। साथ ही इतने थोड़े संयोगके बाद प्रभुके चरणोंसे वियोग भी हुआ, इसका उसे अति विरह हुआ। यह तो उसे मालूम ही था कि प्रभु हमें कुबेरके पास लौटा देंगे; परन्तु इतनी जल्दी लौटा देंगे इस बातकी आशा न थी। इसीलिये उसे हर्षके साथ ही विरहका अति शोक हुआ। *'हरष बिरह'* का क्रम ही इस बातका साक्षी है कि यह दोनों विरोधाभासी भाव भगवत्-चरणोंके सम्बन्धमें ही उसके हृदयमें उठे। कुबेरकी चीज कुबेरके पास जानी थी और कुबेरको सम्मानपूर्वक राज्यावरोहणके अवसरपर आनेका मौका भी देना था।

इस प्रसङ्गमें पुष्पकविमान विभीषणका नहीं था। भेंट होनेके कारण वह प्रभुका ही था और प्रभुने उसे अपने विजयके उपहारके रूपमें कुबेरको लौटाया। देवताओंका कष्ट दूर करनेके लिये भी तो यह अवतार था, और कुबेरके साथ रावणने जो अन्याय किया था उसका प्रतीकार इतनी मुद्दतके बाद भगवान्‌के हाथों हुआ।

टिप्पणी—३ *'प्रेरित राम चलेउ'* से सूचित किया कि उसकी जानेकी इच्छा न थी। इसीसे कुबेरके मिलनेका हर्ष थोड़ा है और रामविरह बहुत है।—[☞पुष्पकका विस्तृत वर्णन अगस्त्यसंहितामें है। इसका आकार हंसकी जोड़ीके समान कहा गया है। विशेष लं० ११८ (४) (६) में देखिये।]

मा० म०—बालकाण्डमें जो प्रभुको *'गई बहोर गरीब निवाजू'* कहा था उसका यहाँ चरितार्थ है। कुबेरजीकी गयी हुई वस्तु उनको पुन: प्राप्त करा दी।

शीला—पुष्पकविमान नगरके बाहरहीसे कुबेरके पास भेजनेका कारण यह है कि एक तो वह देवयान है। उसे नरलोकमें रखना उचित नहीं। दूसरे नगरमें कामदार आदि कोई इसे सुन्दर समझकर रख लेनेको न कहे। तीसरे, कैदसे कैदी छूटकर तुरन्त घर जानेकी इच्छा करता ही है। अतएव तुरन्त विदा कर दिया।

वीर—हर्ष और शोक दोनों भावोंका एक साथ उत्पन्न होना 'प्रथम समुच्चय अलङ्कार' है।

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥ १॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥ २॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥ ३॥

अर्थ—श्रीभरतजीके साथ सब लोग आये। श्रीरघुवीर रामजीके वियोगसे सबका शरीर दुबला (एवं श्रीरहित) हो गया है॥ १॥ वामदेव, वसिष्ठादि मुनिश्रेष्ठोंको देख, पृथिवीपर धनुषबाणको रखकर भाई लक्ष्मणसहित प्रभुने दौड़कर गुरुजीके चरणकमल पकड़ लिये। दोनों भाइयोंके शरीर अत्यन्त रोमाञ्चित हो रहे हैं॥ २-३॥

नोट—*'सब लोगा'* इति। पूर्व जो *'हरषित गुर परिजन अनुज भूसुरबृंद समेत। चले भरत*.........॥' (३) कहा था वही यहाँ *'सब लोग'* हैं। एक गुण इन सबमें प्रत्यक्ष है, अतः उसे कहते हैं—*'कृस तन*.......।' गुरु भी कृशतन हैं।

टिप्पणी—१ (क) *'आये भरत संग सब लोगा'* इति। *'हरषित गुर परिजन अनुज भूसुरबृन्द समेत। चले भरत मन हरष*.........॥' इस दोहेपर भरतजीका प्रसङ्ग छूटा था, अब फिर वहींसे कहते हैं। (ख) श्रीरामजीके प्रेम और विरहमें श्रीभरतजी सबसे अधिक हैं, इसीसे श्रीरामजीके पास चलनेमें श्रीभरतजीकी प्रधानता कहते हैं कि उनके साथ और सब लोग हैं (और इस समय राज्यकार्यभार भी इन्हींके हाथमें है, इन्हींके कारण प्रभु श्रीअवध लौटकर आये, नहीं तो क्यों आते? अतः इनको अगुआ होना योग्य ही है)। (ग)—*'कृसतन श्रीरघुबीर बियोगा'* यह *'सब लोगा'* का विशेषण है। यहाँ श्रीभरतजीको कृशतन नहीं कहते; क्योंकि उनको प्रथम ही कृशतन कह आये हैं, यथा—*'बैठे देखि कुसासन जटा-मुकुट कृसगात'* (उ० १)। (घ) *'श्रीरघुबीर बियोगा'* का भाव कि श्रीरघुबीरवियोगसे लोगोंकी श्री हत हो गयी है, यथा—*'श्रीहत सीय बिरह दुति हीना। जथा अवध नर नारि मलीना॥'* (२। १९९। ५) ['कृशतन' रामवियोगसे यह भी जनाया कि १४ वर्षके पूर्व ये सब शरीरसे पुष्ट थे, मुकुट, आभूषणादि पहने रहते थे, यथा—'**अधारयद्यो विविधा दिव्याः सुमनसः स्रजः। भूषणानि महार्हाणि वस्त्राणि विविधानि च॥ सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम्॥**' (पं० रा० व० श)]

२ *'बामदेव बसिष्ठ*.........' इति। [वामदेव-वसिष्ठादिको प्रथम कहकर दिखाया कि यद्यपि सबको लालसा है कि प्रथम हमको ही दर्शन हों, प्रथम हमसे ही मिलें, तथापि सब मर्यादाका पालन करते हैं, इसीसे वामदेवादिको ही आगे किये हुए हैं। उधर प्रभु भी मर्यादापुरुषोत्तम ही ठहरे, वे धर्ममर्यादा कब मिटा सकते हैं? इसीसे वे प्रथम भरतजीसे न मिलकर प्रथम गुरुविप्रवृन्दसे ही मिले। (पं० रा० व० श०)] (क) वामदेवजीकी श्रेष्ठता दिखानेके लिये वसिष्ठजीसे प्रथम वामदेवजीका नाम कहा और वसिष्ठजीकी श्रेष्ठता दिखानेके लिये उनको मुनिनायक कहा। (ख) *'देखे प्रभु महि धरि धनु सायक'* इति। धर्मशास्त्रमें लिखा है कि शस्त्रास्त्र धारण करके गुरुको न मिले, इसीसे धनुष-बाणको पृथ्वीपर रखकर तब श्रीरामजी उनसे मिले—'**शस्त्रपाणिर्न प्रणमेत्**'।

गौड़जी—*'महि धरि धनुसायक'।* बड़ोंको प्रणाम करनेमें अत्यन्त विनम्रता प्रकट करनेके लिये साधारणतया टोपी या पगड़ी उतारकर चरणोंपर सिर धरते हैं, क्योंकि टोपी या पगड़ी व्यक्तिके सबसे बड़े सम्मानके चिह्न हैं। इनको अलग किया अर्थात् गुरुजनके सामने अपना सम्मान या प्रतिष्ठा कोई चीज नहीं है। यह धनुष-बाण धारण करना भी वही आत्मसम्मानकी चीज है। क्षत्रिय जब किसीके सामने सिर झुकाता है और आत्मसमर्पण करता है तो अपने हथियारके द्वारा। यहाँ *'बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं',* स्वयं प्रभुके ही गुरु हैं, इनसे अधिक सम्मानका पात्र कौन हो सकता है? भरद्वाज, वाल्मीकि आदिको जो सम्मान नहीं प्राप्त है वह वसिष्ठजीको सुलभ है। इसीलिये उन ऋषियोंके प्रसङ्गमें जो बात नहीं हुई वह इनके प्रसङ्गमें दिखायी गयी है।

पं०—शस्त्र छोड़कर चरणोंसे लगनेका भाव कि—(क) धनुष-बाणके होते चरणोंसे लपटना कठिन था। अथवा, (ख)—शस्त्रसंयुक्त रजोगुणी दर्शन तो सब प्रजाको देना है, आयुध छोड़ सत्त्वगुणी प्रणाम गुरुजनोंको किया; क्योंकि मर्यादापुरुषोत्तम हैं। वा (ग)—पृथ्वीपर रखकर सूचित किया कि इस (पृथ्वी) की प्रार्थनाके कारण हमने इन्हें धारण किया था। अब उस कार्यको कर आया हूँ, ये आयुध सदा इसकी रक्षा करेंगे।—(पर ये क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं)।

मा० शं०—भरद्वाज, वाल्मीकि, अगस्त्यादिसे मिलापसमय प्रणाम करनेमें धनुषबाणादिका उतारकर रखना नहीं कहा, यहाँ रखनेका भाव यह है कि अब इनका काम नहीं रह गया, केवल शोभाके लिये धारण करूँगा।

टिप्पणी—३ *'धाइ धरे गुरुचरन*.........' इति। जैसे श्रीरामजीसे मिलनेको लोग दौड़े वैसे ही गुरुजीसे मिलनेको

श्रीरामजी दौड़े। *'धरि धनु सायक'*। *'धाइ धरे'* इस पदसे जनाया कि गुरुसे मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठासे वे धनुष-बाण किसीको थँभा न सके, जल्दीमें पृथ्वीहीपर धर दिया। (*'देखे'* के साथ ही *'धरि धनु सायक……'* कहकर जनाया कि दर्शन होते ही आयुध रखकर दौड़े।) ☞ जब अवधसे वनको चले थे तब गुरुपदकमलकी वन्दना की थी, यथा—*'गुर पदपदुम हरषि सिरु नावा'* और अब जब वनसे लौटे तब गुरुचरणारविन्दको जाकर पकड़ लिये। ['खर्रा—[*'धाइ धरे'* से जनाया कि चरणोंसे लगकर प्रणाम किया।]

टिप्पणी—४ *'अनुज सहित अति पुलक तनोरुह'* इति। (क) *'अनुज सहित'* कहकर सूचित किया कि दोनों भाइयोंने धनुष-बाण पृथिवीपर धरकर, दौड़कर चरण पकड़े। (ख) दोनोंके शरीरमें अत्यन्त पुलकावली हुई, इस कथनका भाव यह है कि गुरुको प्रणाम करनेमें पुलकांग न हो तो जन्म व्यर्थ है, यथा—*'रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुर पाय। तुलसी जिन्हहि न पुलक तन ते जग जीवत जाय॥'* (दो० ४२)

भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया॥ ४॥
सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥ ५॥

अर्थ—मुनिराज वसिष्ठजीने उन्हें (उठाकर और) हृदयसे लगाकर भेंट करके उनसे कुशल पूछी। उन्होंने कहा कि आपकी ही दयासे (वा दयामें) हमारी कुशल है*॥ ४॥ धर्मकी धुरी धारण करनेवाले रघुकुलके नाथ श्रीरामजीने सब ब्राह्मणोंसे मिलकर उनको मस्तक नवाया॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'भेंटि कुसल बूझी……'* इति। (क) श्रीरामजी दास्यभावसे वसिष्ठजीके चरणोंपर पड़े और वसिष्ठजीने वात्सल्यभावसे उन्हें हृदयमें लगा लिया। कुशल पूछना लोक-व्यवहार है, इससे कुशल पूछी। प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर कुशल पूछी इसीसे उनको *'मुनिराया'* कहा, बड़े लोगोंकी यही रीति है तथा श्रीरामजीमें प्रेम होनेसे ही मुनियोंकी बड़ाई है। यथा—*'रामसनेह सरस मन जासू। साधुसभा बड़ आदर तासू॥'* (२। २७७। ४) (ख) *'हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।'* गुरुके अधीन कुशल है, यथा—*'राखै गुरु जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥'* (१। १६६) इसीसे श्रीरामजीने गुरुकी दयासे कुशल कहा। यथा—*'तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरुकुलकृपा सँभारी।……मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा।'* (२। ३०५) *'बूझत राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥'* (२। २७०। ८)

खर्रा—यहाँ दया बीज है और कुशल फल है। भाव कि जैसे आपकी दया सब प्रकारसे शोभित है वैसे ही सब प्रकारसे कुशल है।

वि० त्रि०—सरकारने वामदेव-वसिष्ठ मुनिनायकको देखते ही धनुष-बाण पृथ्वीपर रखकर दौड़कर गुरुजीके चरणकमलोंको पकड़ा, जिसमें चित्रकूटके मिलनकी भाँति गुरुजीको दौड़ना न पड़े। यथा—*'मुनिबर धाइ लिए उर लाई'* मुनिजीने प्रेमसे अधीर होकर सरकारको उठाकर हृदयसे लगा लिया और तब कुशल पूछा। सरकारने दो शब्दोंमें उत्तर दिया—*'हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।'* भाव कि हमारा कुशल और आपकी दया दो वस्तु नहीं है। जो बात भरतजीने कही थी वही रामजी कह रहे हैं। *'दलि दुख तजै सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना॥'* सरकारके हृदयमें यही भाव है कि रावणवध गुरुजीकी कृपासे हुआ। सखाओंसे कहा भी *'गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे॥'*

टिप्पणी—२ (क) *'सकल द्विजन्ह………'* इति। गुरु सबसे बड़े हैं इससे प्रथम गुरुसे मिले तब ब्राह्मणोंसे। सब विप्रवृन्दसे मिल-भेंटकर मस्तक नवाया। (ख) *'धर्मधुरंधर रघुकुलनाथा'* का भाव कि धर्मसे कुलकी वृद्धि होती है, श्रीरामजी रघुकुलके स्वामी हैं, धर्म करके रघुकुलको बढ़ाते हैं। सब ब्राह्मणोंको माथा नवाते हैं, इससे बढ़कर पुण्य नहीं, यथा—*'पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा॥'* (४५। ७) इसी धर्मसे रघुकुल बढ़ता है।—[गुरुसे मिलकर ब्राह्मणोंसे मिले; क्योंकि आप ब्रह्मण्यदेव हैं।

* वीर—प्रश्नके शब्दका उत्तर होना चित्रोत्तर अलङ्कार है।

गुरुसे पहिले मिले क्योंकि ये ब्राह्मण ही नहीं, वरन् ब्रह्माके पुत्र हैं और साथ-ही-साथ इक्ष्वाकुजीके समयसे ही कुलके गुरु ये ही चले आ रहे हैं।]

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥ ६॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥ ७॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥ ८॥

अर्थ—फिर श्रीभरतजीने प्रभुके चरणकमल पकड़े कि जिन्हें देवता, मुनि, शङ्करजी और ब्रह्माजी प्रणाम करते हैं॥ ६॥ वे पृथ्वीपर (साष्टाङ्ग) पड़े हैं, उठाये नहीं उठते, दयासागर श्रीरामजीने बलपूर्वक उनको उठाया और हृदयसे लगा लिया॥ ७॥ (दोनोंके) श्यामल शरीरमें रोएँ खड़े हो गये और नवीन-कमल-समान नेत्रोंमें जलकी बाढ़ आ गयी॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'गहे भरत पुनि प्रभु पद.........'* इति। भाइयोंमें श्रीराम और भरतजी बड़े हैं इससे प्रथम इनका मिलाप लिखते हैं। अभी लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीके मिलनेका समय नहीं है। जब दोनों भाई श्रीभरत-शत्रुघ्नजी श्रीरामजीसे मिल चुके तब लक्ष्मणजी इन दोनोंसे मिले। (ख) *'नमत जिन्हहि सुर.........'* इति। *'पद पंकज'* कहकर इन चरणोंका स्वरूप बताया और *'नमत'* विशेषण देकर इन चरणोंकी बड़ाई की। इस विशेषणसे जनाया कि भ्राता-भावसे चरण नहीं पकड़े, वरन् इस भावसे कि इन चरणोंको सुर, मुनि, शङ्कर और ब्रह्माजीतक मस्तक नवाते हैं। [लङ्कामें सब देवता, शङ्करजी और ब्रह्माजीने आकर श्रीरामजीकी स्तुति की थी और चरणोंकी भक्ति माँगी थी।—लं० १ । १० (२) से दोहा १५ तक देखिये। यह बात श्रीहनुमान्‌जीने *'अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।'* (७। २। १४) के उत्तरमें कही थी। यही 'प्रभु'-चरित (प्रभुताका चरित) है]।

पं० रा० व० श०—*'नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज'* से सूचित करते हैं कि चरण पकड़ते समय श्रीभरतजी इन चरणोंका ममत्व भी अपने हृदयमें ले आये कि मुनियोंने मनन करके निश्चय कर लिया है कि ये ही चरण नमस्कार-योग्य हैं, देवता तथा समस्त कल्याणोंके कर्ता शङ्करजी तथा ब्रह्माजी जिनकी अज पदवी है, जो सबके पितामह हैं जिन्होंने वेदोंको प्रकट किया, ऐसे-ऐसे ईश्वर भी इनको नमस्कार करते हैं।

वै०—यहाँ लीला तो माधुर्य है; इसमें ऐश्वर्य दरसानेवाले विशेषण देकर भरतके अहोभाग्यकी प्रशंसा प्रकट की है।

मा० म०—*'नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज'* से जनाया कि जब भरतजीने इन चरणोंको पकड़ा तब ब्रह्मादिने इनको बड़भागी जानकर प्रणाम किया और उन चरणकमलोंको भी दूरसे ही प्रणाम किया। [मेरी समझमें यह चरण *'प्रभुपदपंकज'* का विशेषण है; इसीसे प्रभुत्वसूचक *'प्रभु'* शब्द यहाँ दिया है। ब्रह्मादि सदा ही इनको नमस्कार किया करते हैं, यही भाव है।]

वीर—सामान्य बातका समर्थन विशेष सिद्धान्तसे करना 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है। रोमाञ्च और अश्रु सात्त्विक अनुभाव हैं।

टिप्पणी—२ *'परे भूमि नहिं उठत उठाए.........।'* इति। (क) प्रेममें मग्न हैं इसीसे उठाये नहीं उठते, यथा—*'बार-बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥'* (५। ३३। १) जब उठानेसे न उठे तब बल करके उठाया।—[भगवान् शङ्कर जिस दशाका ध्यान कर निमग्न हो जाते हैं, सुध-बुध भूल जाते हैं, यथा—*'प्रभु कर पंकज कपिके सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥'* (५। ३३। २) तब भला जो श्रीभरत उस दशाको साक्षात् प्राप्त हैं वे कैसे झटसे उसका वियोग स्वीकार करेंगे? उठाये न उठनेसे जनाया कि १४ वर्षपर अपने सर्वस्व इन चरणोंकी प्राप्ति होनेसे उनको छोड़नेकी इच्छा नहीं, इसीसे नहीं उठते। जो सुख अनुभव हो रहा है वह न रह जायगा। मयंककार भी कहते हैं कि 'जिन चरणोंकी पादुकाओंका अवलम्बन करके भरतजी विरह (अवधि) सिन्धुके पार हो गये वह चरणकमल स्वयं मिल गया तब

उस अपने जीवन-आधारको श्रीभरतजी क्योंकर छोड़ सकते हैं?'*] (ख)—'*कृपासिंधु*' कहा, क्योंकि श्रीभरतजीका प्रेम देखकर उनपर बड़ी कृपा की, हृदयसे लगाया। श्रीभरतजी दासभावसे चरणोंपर पड़े और श्रीरामजीने स्वामीभावसे उठाकर हृदयसे लगा लिया।

नोट—☞मिलान कीजिये—'**रघुनाथोऽपि तं दृष्ट्वा दण्डवत् पतितं भुवि। उत्थाप्य जगृहे दोर्भ्यां हर्षालोकसमन्वितः॥ उत्थापितोऽपि हि भृशं नोदतिष्ठद्रुदन्मुहुः। रामचन्द्रपदाम्भोजग्रहणासक्तबाहुभृत्॥**' (प० पु० पा० २। ३०-३१) अर्थात् श्रीरघुनाथजीको देखकर पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीरघुनाथजीने देखकर उठाकर दोनों हाथोंसे आनन्दयुक्त होकर पकड़ लिया। ये बारम्बार उठाये जाते हुए भी नहीं उठते वरन् उनके चरणकमलोंमें आसक्त पड़े हुए वे बोले। २—चरण पकड़े हुए भरतजीने अनेक दीनताके वचन कहे हैं। वे ये हैं—'मुझ दुराचारी पापी दुष्टपर आप कृपा करें। हे महाबाहो! हे करुणानिधे! आप करुणा करें। मेरे कारण आप और श्रीजानकीजी इतना कोमल होकर भी इन चरणोंसे वन-वन फिरीं। इत्यादि।'

टिप्पणी—'*स्यामल गात रोम भए ठाढ़े।*………' इति। (क) श्याम शरीर कहकर शरीरकी शोभा कही, यथा—'*स्याम सरीरु सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥*' (१। ३२७। १) '*रोम भए ठाढ़े*' से प्रेमकी शोभा कही। प्रेम दो जगहसे दिखायी पड़ता है, एक तो शरीरसे ,दूसरे नेत्रोंसे। शरीरमें पुलक और रोमाञ्च हो रहा है, नेत्रोंसे जल (प्रेमाश्रु) चल रहा है। इसीसे यहाँ इन्हीं दो स्थानोंका वर्णन किया और दोनोंकी बड़ाई की—शरीरको श्यामल और नेत्रोंको नवीन अरुण कमल कहा। (राजीव विशेषणसे जनाया कि नेत्रोंके ऊपर और नीचेके भागमें ललाई है, जो नेत्रोंकी शोभा मानी जाती है।)। (ख)—☞'*स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥*' यह दशा दोनों भाइयोंकी हुई।

छंद—राजीवलोचन स्त्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा† लही॥१॥

अर्थ—कमल-समान नेत्रोंसे जल चल रहा है, सुन्दर कोमल शरीरमें सुन्दर पुलकावली शोभित हो रही है। त्रिलोकके स्वामी प्रभु श्रीरामजी भाईको अत्यन्त प्रेमसे हृदयसे लगाकर मिले। भाईसे मिलनेमें प्रभु (जैसे) शोभित हो रहे हैं मुझसे उसकी उपमा कही नहीं जाती (अर्थात् उपमा त्रिलोकमें नहीं है)। (ऐसा जान पड़ता है) मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारणकर मिलते हुए श्रेष्ठ परमा शोभाको प्राप्त हुए॥ १॥

टिप्पणी—१ '*राजीवलोचन स्त्रवत जल*………' इति। (क) प्रथम नेत्रोंमें जलका बढ़ना कहा, यथा—'*नव राजीव नयन जल बाढ़े*………', अब जलका बहना कहते हैं—'*स्त्रवत जल।*' (ख) शरीर ललित है उसके योगसे पुलकावली भी ललित कही गयी। शरीरमें पुलकावलीका होना शरीरकी शोभा है और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुका बहना नेत्रोंकी शोभा है। ललित विशेषणका दूसरा भाव यह है कि पुलकावली दो प्रकारकी है—एक दुःखकी, दूसरी सुखकी। दुःखकी, यथा—'*सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥*' (१। ६८। ३) इस उदाहरणमें सुखकी पुलकावली नहीं है वरन् दुःखकी है, इसीसे यहाँ 'ललित' विशेषण नहीं देते। [इसी तरह '*कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह। थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥*' (२। १५२) में दुःखका पुलक है। वियोगमें स्नेहकी वृद्धिका होना 'दुःख' कहलाता

* मा० म०—बलपूर्वक उठानेका भाव कि—(क) भरतजी अत्यन्त कृश हैं, पृथ्वीपर गिरनेसे चोट लगनेके भयसे भरतजीको उठाया। वा, (ख) कपियोंको भरतजीका बल दिखानेके लिये उठाया और सूचित किया कि ये अर्जित हैं। लङ्काके युद्धमें इनके बलकी प्रशंसा किया करते थे वह आज दिखाया। अत्यन्त दुर्बल देख जाम्बवतादिसे कहा कि गिरने न पावें अतः प्रथम जाम्बवन्तादिने तथा ब्रह्मादिकने उठाया, जब न उठे तब रामचन्द्रजीने उठाया।

† परमा (का०, मा० म०, १८१७, १८१८)। सुषमा—भा० दा०, १४८२।

है और संयोगमें स्नेहकी वृद्धि होना 'सुख' कहा जाता है। यथा—*'तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन। कहु कारन निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बयन॥'* (१। २२८)—यह दशा संयोग-सम्बन्धके हर्षकी है। हर्ष और शोकके हर्ष आदिकी पहिचान बालकाण्ड दोहा २२८ में देखिये।] और यहाँ श्रीराम-भरत-मिलापमें सुखकी पुलकावली है, इसीसे इसे 'ललित' कहते हैं।

२ *'अति प्रेम हृदय लगाइ'''''''''* ' इति। (क) छोटे भाईको हृदयमें लगाकर अत्यन्त प्रेम किया, अत: *'त्रिभुवनधनी'* कहा अर्थात् जो जैसा बड़ा होता है वैसा ही वह छोटेपर अधिक कृपा करता है, श्रीरामजी त्रैलोक्यपति हैं तब ऐसी कृपा और प्रेम करना उनके योग्य ही है।—*'बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं॥'* (१। १६७। ७) *'त्रिभुवनधनी'* का भाव कि जैसा श्रीरामजीका भरतजीपर *'अति प्रेम'* है वैसा प्रेम त्रिलोकमें किसीपर नहीं है,—*'भरत सनेह अवधि ममता की। जद्यपि राम सींव समता की॥'* (ख) त्रिलोकके पालनमें समर्थ हैं अत: *'प्रभु'* कहा।

३ *'प्रभु मिलत अनुजहि सोह'''''''''* ' इति। प्रभु भाईसे मिलते हैं। श्रीभरतजी प्रेमकी मूर्त्ति हैं। उस प्रेममूर्त्तिसे श्रीरामजी आप (स्वयं ही) मिलते हैं (मूर्त्ति उनसे नहीं मिल रही है)।

जनु प्रेम अरु सिंगारु तनु धरि मिले

पं० रामकुमारजी—श्रीभरतजी प्रेमकी मूर्त्ति हैं, यथा—*'भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेममूरति तनु आही॥'* (२। १८४। ४) श्रीरामजी शृङ्गारकी मूर्त्ति हैं, यथा—*'जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥'* (१। २४१) *'तनु धरि'* का भाव कि प्रेम और शृङ्गारके तन नहीं हैं, ये शरीरधारी नहीं हैं। पर इस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दोनोंने तन धारण कर लिया है। [यहाँ अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है] (ग) *'सुषमा'*=परम शोभा। *'बर सुषमा लही'* का भाव कि प्रेम शोभित हैं और शृङ्गार भी शोभित है। पर मूर्त्तिमान् हो जानेसे ये दोनों परम शोभित हो गये हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीरामजी प्रेमसे मिलते हैं, यह श्रीरामजीकी शोभा है और श्रीरामजीके प्रेमकी मूर्त्ति होना, यह भरतजीकी शोभा है। ☞मिलान कीजिये—*'सोहत सीयराम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहु इक ठोरी॥'* (१। २६५। ७) *'मनहु प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरें तन कह सब कोऊ॥'* (२। १११। २)

वि० टी०—श्रीरामचन्द्रजी और श्रीभरतजीके इस अद्भुत प्रेमपूर्ण मिलापके विषयमें गोस्वामीजीने यही कहा है कि इस अनुपम शोभाके तुल्य कुछ है ही नहीं कि जिससे मिलान करके बताया जाय, कारण कि दोनोंके श्यामल छबीले रूप, परस्पर स्नेह, सेव्यसेवक-भाव और भायप आदि सभी इस प्रकारसे बढ़कर हैं कि उनकी तुलना ही नहीं की जा सकती। हाँ तर्कनासे यदि कुछ कहा जाय तो यों कि मानो शृङ्गाररस (प्रीति-परिपूर्ण श्रीरघुनाथजी) और प्रेम (उसीके अङ्गभूत भरतजी) आपसमें मिलाप कर रहे हों। प्रीतिका अङ्ग ही प्रेम है।

पं० रा० व० श०—शृङ्गार भी प्रेमरस है। दोनोंका वर्ण श्याम है। प्रेमकी शृङ्गारसे और शृङ्गारकी प्रेमसे शोभा है। परस्पर एक-दूसरेकी शोभाको बढ़ानेवाले हैं। इसी प्रकार श्रीभरतजीसे मिलनेमें श्रीरामजीकी और श्रीरामजीसे मिलनेमें श्रीभरतजीकी शोभा और सार्थकता हो रही है।

बैजनाथजी—(१) जबतक भरतजी वियोगमें रहे तबतक नवधासहित प्रेमाभक्तिकी दशा रही। श्रीहनुमान्‌जीसे खबर पानेपर प्रेमकी ग्यारहवीं गलितदशा प्रकट हुई और प्रभुको प्रणाम करनेमें उनकी बारहवीं संतृप्त दशा प्रकट हुई। (२) प्रेम और शृङ्गार। श्यामवर्ण तो श्रीराम और श्रीभरत दोनों ही हैं, दोनों ही प्रेमभरे हैं; पर यहाँ केवल प्रेमरूप भरतको और शृङ्गाररूप प्रभुको कहा; इसमें क्या हेतु है? इसमें भाव यह है कि—प्रेमादि रसके अनुचर हैं तथा भरत सेवक हैं। पुन:, भरतजी सब वस्तुओंसे विरक्त शान्तरसमय शुद्ध रघुनन्दनके प्रेमी हैं। अत: भरतको प्रेमरूप कहा। पुन:, जैसे रस स्वामी है वैसे ही रघुनन्दन स्वामी हैं। इनका प्रेम केवल लालन-पालनहेतु दया छोहरूप है। और रघुनन्दन, जनकनन्दिनी परस्पर स्नेहभरे वार्ता-अवलोकनादि आलम्बन शृङ्गाररूप प्रसिद्ध ही देख पड़ते हैं; अत: प्रभुको शृङ्गाररूप कहा। दोनोंके मिलनेमें परम शोभा कही, क्योंकि जब शृङ्गाररसमें प्रेम मिलता है तभी उत्तम शोभा प्राप्त होती है।

गौड़जी—शृङ्गाररसका प्रेम स्थायी भाव है और स्थायी भाव रसका प्राण समझा जाता है। भरतजीको प्रेमकी मूर्ति बताकर और प्रभुको मूर्तिमान् शृङ्गार कहकर भगवत् और परमभागवतका देह और प्राणका सम्बन्ध जताया है। भगवान् प्राणोंके प्राण और जीवोंके जीव हैं तो भी भक्तिकी ऐसी महिमा है कि भागवत भगवत्‌का प्राण बन जाता है,—'*मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगानीर। पीछे-पीछे हरि फिरै कहत 'कबीर कबीर॥'* यहाँ ध्वनिसे भरतकी भक्तिकी वह ऊँचाई दिखायी है, जिसमें भागवत प्राण हो जाता है और भगवत् शरीर।

छंद—बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥ २॥

अर्थ—दयासागर रामजी भरतजीसे कुशल पूछते हैं (पर उनके मुखसे) वचन शीघ्र नहीं निकलता। (श्रीशिवजी कहते हैं) हे शिवा (पार्वतीजी)! सुनो, वह सुख (जो श्रीभरतजीको प्राप्त है) वाणी और मनसे परे है, जो उस सुखको पाता है, वही जानता है (दूसरा नहीं जानता और पानेवाला जानता है, पर कह वह भी नहीं सकता जैसे गूँगेका गुड़। यथा—'*उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कबि कोऊ॥'* यह श्रीसीताजीके विषयमें कहा था। वैसा ही यहाँ भरतजीके विषयमें कहा है)। हे कोसलपुरीके नाथ! आपने आर्त जानकर जो जन-(मुझको वा हम सब) को दर्शन दिये इससे अब कुशल है (नहीं तो कुशल कहाँ थी)। विरहसागरमें डूबते हुए मुझको, हे दयासागर! आपने हाथ पकड़कर निकाल लिया।

रा० शं० श०—१ श्रीरामजी खूब जानते हैं कि श्रीभरतजीको हमारे बिना बड़ा कष्ट हुआ, यथा—'*तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई', 'बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर'* अर्थात् वे मरणप्राय हैं। फिर हनुमान्‌जीने जो दशा देखी थी वह कही भी होगी और अब स्वयं उनकी दुर्बलता देख रहे हैं, इसीसे कृपानिधि कुशल पूछते हैं। २—'*बेगि*' का भाव कि श्रीरामजी '*बेगि*' कुशल सुनना चाहते हैं पर भरतजी '*बेगि*' कह नहीं सके।

टिप्पणी—१ (क)'*बूझत कृपानिधि*……।' इति। श्रीभरतजीकी दशा देख अत्यन्त कृपा करके उनसे कुशल पूछते हैं। प्रेममें वचन जल्दी नहीं निकलता, क्योंकि कण्ठ गद्गद हो जाता है और श्रीभरतजी तो प्रेममूर्ति ही हैं, इसीसे इनके मुखसे वचन शीघ्र न निकला। [उस सुखकी लालचसे उत्तर देनेमें विलम्ब किया। (खर्रा)] '*भरतहि*' देहलीदीपक है। (ख) '*सुनु सिवा सो सुख*……' इति। वचनसे भिन्न है अर्थात् हम उसे कह नहीं सकते, यथा—'*कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥ कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा॥'* (२। २४१। ३-४) मनसे भिन्न है अर्थात् हमारा मन वहाँतक नहीं पहुँचता, यथा—'*अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हरको॥'* (२। २४१। ५) भाव कि परम प्रेमसे पूर्ण हैं। मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार सब प्रेममें लय हो गये हैं। ऐसा सुख हो रहा है। पूर्व अ० २४१ में भी मिलाप ऐसा ही है, उससे मिलान कीजिये—'*मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥ परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥ कहहु सुपेम प्रगट को करई।'* (२। २४१) इत्यादि।—वही सब भाव यहाँ हैं। (पं० रा० व० श०)

रा० प्र०—मन, वचनसे भिन्न कहनेका भाव कि मनादिकी दौड़ मायिक विषयोंतक ही है, यथा—'*गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥'* और यह सुख मायासे परे है, स्फुरणमात्र-ग्राह्य है।

मा० म०—१ (क)—परम अकथनीय जो चार आनन्द हैं—विषयानन्द, द्वैतानन्द, सेवानन्द (वासनानन्द) और अद्वैतानन्द—इससे भी बड़ा ब्रह्मानन्द है। इस ब्रह्मानन्दका भी सार परतम आनन्द है जो श्रीभरतजीको प्राप्त हुआ, इसीसे वे पाँचों आनन्द इस आनन्दमें बह गये। (ख)—दूसरा अर्थ यह है कि परमानन्दके

प्राप्त होनेसे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चारों बह गये और इनसे श्रेष्ठ जो विवेक है सो भी प्रेमप्रवाहमें बह गया। अब जो प्रेम रह गया वह शुद्ध कुसुमजलके ऐसा एकरंग हो गया, वहाँ कौन किससे कहे, अपनेमें ही आनन्द-अनुभव होने लगा।

वि० टी०—यहाँ जिस आनन्दका संकेत शिवजी करते हैं उसका अनुभव मन और वचनसे नहीं होता, जैसा कहा है **'यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह'** अर्थात् जहाँसे मनके साथ वाणी भी बिना पहुँचे हुए ही लौट आती है। कारण जबतक मन संकल्प-विकल्पकी तरङ्गोंमें घूमता रहता है तबतक उसे वह आनन्द नहीं मिलता। वैसे ही भरतजी जब श्रीरामचन्द्रजीके आगमनके पूर्व नाना प्रकारके विचार बाँध रहे थे उस समय उनके चित्तको स्थिरता न थी; परन्तु जब रामरूपको १४ वर्षके वियोगके अनन्तर पाया तथा दोनोंमें परस्पर प्रेम हुआ, उस समय भरतजी उस अकथनीय आनन्दमें मग्न हो गये, जिसमें योगीजन मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन सबोंको ब्रह्ममें लीनकर ब्रह्ममय हो रहते हैं और इस सुखके वर्णन करनेके योग्य ही उस समय नहीं रहते, जब ध्यान छोड़ देते हैं तब कुछ कथन कर सकते हैं।

वै०—मन प्रकृतिका अंश है और मनके कर्माकर्मादि षट् अंश हैं। यथा **जिज्ञासपञ्चके—'कर्माकर्मविकर्मादावनियमेन वर्तते। संकल्पश्च विकल्पश्च मनसो बहुशो यथा॥'** जबतक जीव मनके वश रहता है तबतक वह इन्हीं छः में रहता है, और जब वह अन्तःकरणकी वृत्तियोंको त्यागकर आत्मरूपको प्राप्त होता है तब रामस्नेहमय प्रेमानन्द पाता है। अतः उस सुखको मनसे भिन्न कहा। वाणी उस सुखमें बन्द हो जाती है तब कहे कौन? और जब वाणी उस सुखसे बाहर निकली तब वह सुख रह नहीं जाता; अतः वचनसे भिन्न है। जो उसे पाता है वह कह नहीं सकता।

'सो सुख' अर्थात् जो सुख भगवान्‌के परम दर्शनाभिलाषी भक्तको भगवत्-प्राप्तिपर होता है, जैसे मनुजीको हुआ था।

टिप्पणी—२ ***'अब कुसल कोसलनाथ'**'''''''''* इति। (क) ***'अब'*** का भाव कि आपके बिना कौन कुशल है। ***'कोसलनाथ'*** का भाव कि आप कोसलके स्वामी हैं, आपके अब कोसलपुर आनेसे मेरी तथा अवध-वासियोंकी कुशल है। सम्पूर्ण कुशलका भार तो आपपर ही है। (ख) ***'आरत जानि'''*'**—भाव कि दर्शन बिना सब आर्त थे (यथा=***'रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग'***)। प्रथम आर्त कहकर आगे आर्तका स्वरूप कहते हैं कि ***'बूड़त बिरह'''''''''।'*** डूबनेवाला बड़ा आर्त होता है। जैसे उसे कोई हाथ पकड़कर निकाल ले तो उसकी कुशल हो, वैसी ही मेरी कुशल हुई। आशय यह कि मेरी कुशल आपके ही करनेसे हुई, यथा—***'अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥'*** (५। ४६) ***'नाथ कुसल पदपंकज देखें। भयउ भाग भाजनजन लेखें॥'*** (२। ८८। ५)

(घ) ***'बूड़त बिरह बारीस'''''''''*'** इति। दर्शन देना हाथसे पकड़कर बाहर निकालना है। जब हनुमान्‌जी श्रीरामजीका सन्देश लेकर आये तब उनको जहाज कहा, यथा—***'रामबिरह सागर महँ भरत मगन मन होत। बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥'*** जिसमें डूबनेवाला जहाजको पकड़कर बच जाय। और जब श्रीरामजी आये तब कहते हैं कि मुझको पकड़कर विरह-समुद्रसे निकाला। दो जगह दो बातें कहनेमें तात्पर्य यह है कि सन्देशसे साक्षात् श्रीरामजीका आ जाना अधिक है, जैसे हाथ पकड़कर निकाल देना जहाज मिलनेसे अधिक है।-[पूर्व जो कहा था कि ***'आइ गयउ जनु पोत'*** उससे केवल नाथ या जहाजका सहारा मिलना कहा, डूबनेसे बचनेकी आशा हो गयी, पर अभी समुद्र बना है, डूबनेवाला भी अभी समुद्रहीमें हैं, न जाने फिर डूब जाय। पर जब हाथसे बाहर भूमिपर हो गया तब डूबनेका संदेह न रह गया। इस विचारसे दो जगह दो तरहसे कहा]।

मा० म०—***'कर गहि लियो'***—यह ***'कर'*** हनुमान्‌जीको कहा जिन्होंने विरहसिन्धुमें डूबनेसे बचाया। पुनः इसमें यह भी भाव है कि मैं आपके हाथ बिका हूँ; क्योंकि हनुमान्‌जी आपके हाथ हैं, उनके हम ऋणी हैं—ऋणी होनेसे बिके हैं। अब बिक जानेके मिस साथ ही रहूँगा।

दो०—पुनि प्रभु हरषि* सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥ ५॥

अर्थ—फिर (श्रीभरतजीसे भेंटनेके बाद) प्रभु शत्रुघ्नजीको हर्षपूर्वक हृदयसे लगाकर भेंटे (गलेसे गला लगकर मिले)। (जब भरत और शत्रुघ्न दोनोंसे श्रीरामचन्द्रजी मिल चुके) तब श्रीलक्ष्मणजी और श्रीभरतजी दोनों भाई परम प्रेमसे मिले।

मा० म०—'*प्रभु हरषि सत्रुहन*.........'। हर्षित होनेका भाव यह है कि ये प्रेमपात्र श्रीभरतजीकी सेवा करते हैं अथवा लक्ष्मणजीका भाई जानकर वा अपनेमें शत्रुघ्नजीकी प्रीति देखकर हर्षित हो गले लगाया।

टिप्पणी—१ यहाँ श्रीशत्रुघ्नजीका श्रीरामजीको दण्डवत् करना न लिखकर जनाया कि जब भरतजीने दण्डवत् की तब साथ ही इन्होंने भी की थी। जैसे दोनोंने श्रीसीताजीको दण्डवत् की। यथा—'*सीताचरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥*' दोहा (६। २) वैसे ही यहाँ भी दोनोंका साथ दण्डवत् करना समझिये। श्रीभरतजी बड़े भाई हैं इससे उनका मिलाप विस्तारसे लिख दिया, जिसमें इसी तरह सब भाइयोंका मिलाप समझ लिया जाय, इसीसे और सबका मिलाप संक्षेपसे लिखा है, भेंट करना सबका लिखते हैं पर प्रणाम करना किसी भाईका नहीं लिखते।

२—'*लछिमन भरत मिले*.........' इति। यहाँ भी ऐसा समझना चाहिये कि लक्ष्मणजी भरतजीके चरणोंमें पड़े और उन्होंने उठाकर हृदयसे लगा लिया। छोटा भाई दण्डवत् करता है, बड़ा उसे हृदयसे लगाकर मिलता है।

वि० त्रि०—भरतजीसे मिलने और कुशल पूछनेके बाद सरकार अत्यन्त प्रेमसे हृदय लगाकर शत्रुघ्नसे मिले। उधर लक्ष्मण और भरत परम प्रेमसे दोनों भाई मिले। भरतजीका बड़ा प्रेम लक्ष्मणजीपर है, कहते हैं कि '*मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥ ते बन सहहिं बिपति बहु भाँती। निदरेउ कोटि कुलिस एहि छाती॥*' भरतजीपर लक्ष्मणजीका असीम प्रेम है। चित्रकूटमें उस प्रेमका पता चलता है कि '*बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥ मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥*' (२। २४०) रामजी भरतजीसे मिल रहे थे, इसलिये लक्ष्मणजी मनको रोके खड़े थे। छूटते ही भरतजीसे लिपट गये। [चित्रकूटमें जो क्रोध किया था वह क्रोध रामविरोधपर था, व्यक्तिविशेषपर नहीं था। होता तो वहीं क्षमा-प्रार्थना करते।]

नोट—'*परम प्रेमी*' पद देकर जना दिया कि जैसा प्रेम ऊपर श्रीराम-भरत-मिलापमें दिखा आये हैं वैसे ही प्रेमसे ये दोनों भी मिले—शरीरमें अत्यन्त पुलकावली हो रही है, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु चल रहा है इत्यादि। श्रीभरतजी लक्ष्मणजीको बड़भागी, रामचरणानुरागी और परम धन्य एवं छोटा भाई मानकर परम प्रेमसे मिलते हैं और लक्ष्मणजी उनको रामभक्त और बड़ा भाई मानकर परम प्रेमसे मिलते हैं॥ ५॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥ १॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥ २॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥ ३॥

अर्थ—फिर (श्रीभरतजीसे मिल चुकनेपर श्रीशत्रुघ्नजीने श्रीलक्ष्मणजीको दण्डवत्-प्रणाम किया तब) लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजीसे गले लगकर मिले। कठिन विरहसे उत्पन्न सब कठिन दुःख मिट गये॥ १॥ भाई शत्रुघ्नसहित श्रीभरतजीने श्रीसीताजीके चरणोंमें मस्तक नवाया और परम सुखी हुए॥ २॥ प्रभुको देखकर (सब) पुरवासी प्रसन्न हुए, वियोगसे उत्पन्न सब दुःख दूर हो गये॥ ३॥

नोट—१ (क) '*भरतानुज*' का भाव कि शत्रुघ्नको अपना छोटा भाई जानकर न मिले। भरतजीकी

* हरषित—(का०)।

निष्ठा, उनका परम वैराग्य कि *'तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥'* सर्वसम्पत्ति-सम्पन्न पुरमें बिना राग रहे, उनका परम प्रेम, भक्ति, निष्ठा, उनकी यह सब दशा देखते ही लक्ष्मणजीके हृदयमें बिंध गयी। शत्रुघ्नजी उनके अनुवर्त्ती रहकर उनकी सेवा करते रहे, अत: उनको परम धन्य समझकर उनसे मिले जैसे श्रीसुमित्राजी लक्ष्मणजीको पुत्र समझकर न मिलीं। (पं० रा० व० श०) (ख) शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजीके भाई हैं पर भरतजीसे उनका अत्यन्त संसर्ग बालपनसे ही है और इधर भी वे उन्हींके सेवामें रहे हैं, अत: *'भरतानुज'* कहा। (पं०) जैसे श्रीलक्ष्मणजीको प्राय: रामानुज कहा है। लक्ष्मणजी श्रीरामजीके सहोदर भ्राता नहीं हैं, वे केवल इससे 'रामानुज' कहे जाते हैं कि *'बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥'* उसी प्रकार *'लषन लघु भाई'* श्रीशत्रुघ्नजी भरतानुज कहलाते हैं, यथा—*'भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥'* (१। १९८। ४) पूर्व *'सहोदर भ्राता'* पर लिखा जा चुका है कि गीतावलीमें कविने स्पष्ट लिखा है कि श्रीसुमित्रजीके दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं, दोहावली पद २१३ में भी यही कहा है—*'सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम। सुवन लषन रिपुदवन से पावहिं पतिपद प्रेम॥'*

दुसह बिरह संभव दुख मेटे

श्रीपंजाबीजीका मत है कि विरहसम्भव दु:खका मिटना सबोंमें लगाना चाहिये। मयंककार लिखते हैं कि 'विरहसे जो दु:सह दु:ख हुआ था वह मिट गया। अथवा, श्रीलक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी श्रीरामचन्द्र और भरतजीकी सेवा करते हैं अतएव जो विरह श्रीरामचन्द्र और भरतजीको था उस विरहको दोनों भाइयोंने मिलकर नाश कर दिया।'

गौड़जी—यहाँपर *'कथा बिचित्र प्रबंध बनाई'* वाली प्रतिज्ञानुसार मानसकविने बड़ी सुन्दर युक्तियोंद्वारा कथाकी विभेदताका निर्वाह किया है। मानसभरमें कहीं इस बातका उल्लेख नहीं है कि कैकेयी और सुमित्राके कौन-कौन पुत्र हुए। उसका कारण यह है कि एक अवतारमें कैकेयीके तीन सन्तानें हुई हैं—पहले शान्ता और पीछे पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप भरत और शत्रुघ्न दोनों यमज पुत्र हुए। जिन अवतारोंकी कथा अध्यात्म० और वाल्मीकि आदिमें है उनमें कैकेयीके एक ही पुत्र भरत हुए और सुमित्राजीके यमज पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। इस कथाभेदपर प्रस्तुत प्रसङ्गमें बड़ी खूबीसे इशारा किया गया है। भरतानुज कहकर कैकेयीके यमज पुत्रवाली बात दिखायी और *'दुसह बिरह संभव दुख मेटे'* कहकर लक्ष्मणजीके साथ सहोदरका विशेष सम्बन्ध दरसाया। अन्यथा लक्ष्मण और शत्रुघ्नके दुसह विरहके वर्णन करनेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं दीखता। मयंककारने दुसह विरहकी बड़ी अच्छी टीका की है। उन्होंने यह भाव दरसाया है कि लक्ष्मणजी श्रीरघुनाथजीके अनुगामी और सुख-दु:खके साझी हैं और शत्रुघ्नजी भरतजीके। श्रीरघुनाथजीको भरत-वियोगका जो अपार दु:ख है उससे लक्ष्मणजीका भरतवियोग-दु:ख उनका और अपना मिलाकर दूना हो गया है। इधर शत्रुघ्नजीका भी यही हाल है। अनुगामित्वसम्भूत इस दु:सह वियोगदु:खका मिटना इस मिलापसे ही सम्भव हुआ! परन्तु केवल लक्ष्मण और शत्रुघ्नके मिलापसे नहीं, वरं चारों भाइयोंके मिलनेसे; इसीलिये अन्तिम जोड़ीके मिलनेपर ही *'दुसह बिरह संभव दुख मेटे'* कहा गया। मयंककारकी यह व्याख्या बड़ी सुन्दर है, यद्यपि उनके टीकाकारने भावको स्पष्ट दिखा नहीं पाया। फिर भी ध्वनि काव्यमें कविके गम्भीर अभिप्रायतक पहुँचनेकी जरूरत होती है।

वै०—लक्ष्मणकी शक्ति दु:सह थी इसका दु:ख शत्रुघ्नको था। और शत्रुघ्न घरमें हैं कदाचित् ऐश्वर्यमें न भूल गये हों यह लक्ष्मणजीको दु:सह था। सो यह दोनोंका दु:ख देखतेमात्र जाता रहा। ये दोनों यमज जोड़िहा भाई हैं, लोकरीतिसे दोनोंमें वियोगसे विरह हुआ ही चाहे। यह विरह मिलकर मिटा दिया।

पं० रा० व० श०—श्रीभरतजी लक्ष्मणजीको धन्य मानते हैं, उनके जीमें ग्लानि है कि हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? लक्ष्मणजी बड़भागी हैं कि सेवाको प्राप्त हैं। उस विचारसे जो दु:ख हुआ था वह मिट गया। अथवा, सबका मिलाप कह चुके, अन्तमें *'दुसह बिरह संभव दुख मेटे'* कहकर सबको जो वियोग और विरहके कारण दु:ख था उसका मिटना कहा।

पं० रा० व० श०—शत्रुघ्नजी परम भागवत हैं। भागवत दो प्रकारके हैं। एक आर्त, दूसरे दृप्त। भरतजीकी सेवामें दृप्त भागवतकी सेवा इन्हें प्राप्त हुई, पर एक भाग आर्तभागवतकी सेवासे ये वञ्चित थे। अतः लक्ष्मणजीके मिलनेसे उसकी भी पूर्ति हुई। ☞ क्योंकि श्रीरामजीने चार रूपसे अवतीर्ण होकर चार तरहके धर्मोंकी शिक्षा दी है। आपने स्वयं सामान्य धर्मको स्वीकार किया। भरतजीने दृप्तप्रपन्नके धर्मको, लक्ष्मणजीने आर्तप्रपन्नधर्मको और श्रीशत्रुघ्नजीने छोटे होते हुए सबसे बड़ा भार लिया। ये भागवतनिष्ठ हुए। भगवत्-निष्ठको भागवत कहते हैं और भागवतनिष्ठको परम भागवत कहते हैं।

नोट—*'सीता चरन भरत सिरु नावा।'''''''* इति। (क) श्रीभरतजीने स्वामिनीभावसे श्रीसीताजीके चरणोंमें प्रणाम किया; इसीसे यहाँ 'भेंटना' नहीं कहते। मनुस्मृतिका वाक्य है कि गुरुपत्नीका भी अङ्ग-स्पर्श न करे, दूरसे ही प्रणाम करे। (पं० रा० कु०)। (ख) *'अनुज समेत सुख पावा'* कहकर सूचित किया कि जानकीजीका दोनोंने आशीर्वाद पाया। जैसे चित्रकूटमें पाया था। यथा—*'सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥ पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर करकमल परसि बैठाए॥ सीय असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥ सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥'* (२४२। ३—६) वहाँ चरणरजको सिरपर धारण किया था और यहाँ तो चरणहीपर सिर रख दिया है (मा० म०)। (ग) श्रीसीताचरणपर सिर रखकर प्रणाम करनेपर जो सुख दोनोंको हुआ उसे रघुवंश सर्ग १३। ७८ में कालिदासजी इस प्रकार कहते हैं कि जिन चरणोंमें रावणने कितनी प्रार्थना की कि *'एक बार बिलोकु मम ओरा'* ऐसा दृढ़ व्रत वह चरण और भक्तिव्रत धारण करनेवाला भरतजीका सिर—ये दोनों परम सुखको प्राप्त हुए। यथा—'**लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतं तद्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः। ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य॥**' (१३। ७८) (पं० रा० व० श०) (घ) पाँड़ेजीका मत है कि भरतजी रघुनाथजीका सरल स्वभाव जानते थे, परन्तु श्रीजानकीजीकी ओरसे भय था; जब उनकी कृपादृष्टि देखी तब वह भय मिट गया। अतः परम सुख हुआ—विशेष अ० २४२ (३—६) में देखिये।

३ *'प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी।'''''''* इति। (क) पुरवासियोंका प्रसङ्ग *'समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥'* (दोहा ३-४)। पर छोड़ा था, अब फिर वहींसे प्रसङ्ग उठाते हैं। (ख) *'बिपति सब नासी'* इति। विपत्तिको रात्रि कहा है; यथा—*'तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥'* (२। ९६) बिहान (सबेरा) होनेसे रात्रिका नाश होता है, वैसे ही श्रीभानुकुल-कमल दिवाकरके आगमनसे विपत्तिरूपी रात्रिका नाश हुआ।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥ ४॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले* सबहि कृपाला॥ ५॥

अर्थ—सब लोगोंको प्रेमके कारण शीघ्र (सबसे प्रथम प्रभुसे) मिलनेकी उत्कट इच्छा और विह्वलता देखकर खरके शत्रु, दयालु रामचन्द्रजीने खेल किया॥ ४॥ उसी समय (तत्काल) दयालु श्रीरामजी अमितरूपसे प्रकट हो गये और सबसे यथायोग्य मिले॥ ५॥

नोट—*'प्रेमातुर''''''निहारी'* से जनाया कि प्रभु देख रहे हैं कि सब स्त्री-पुरुष कैसे दौड़े आ रहे हैं, कैसे दर्शनके लालायित हैं—यह उत्सुकता कवि ऊपर दिखा आये हैं।

पं० रा० व० श०—पूर्व कह आये कि *'अतिप्रिय मोहि इहाँ के बासी।'* सभी अतिप्रिय हैं और सबकी यही इच्छा है कि हमसे ही प्रथम मिलें। तब यह कैसे करें कि किसीसे पहले और किसीसे पीछे मिलें। अतः अमितरूप होकर एक ही समय सबसे मिले। खरादिके वधमें अमितरूप न थे, वहाँ तो निशिचर ही परस्पर एक-दूसरेको निशिचर न देख रामरूप देखते थे और यहाँ अमितरूपसे प्रकट हुए। इसीसे *'कृपाला'* विशेषण यहाँ दिया।

* मिलि—(का०, १८१७, १८१८, १८४३)।

टिप्पणी—१ *'कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।'* इति। *'खरारी'* का भाव कि जैसे खरके वधके समय कौतुक किया था वैसा ही यहाँ भी किया।

खरयुद्ध-प्रसङ्ग	पुरवासी-मिलाप-प्रसङ्ग
सुरमुनिको सभीत देख कौतुक किया—*'सुरमुनि सभय प्रभु देखि'*	१ सबको प्रेमातुर देख कौतुक किया —*'प्रेमातुर सब लोग निहारी......'*
मायानाथ अति कौतुक कर्त्यो	२ ***कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी***

(वहाँ कोपसे कौतुक किया, क्योंकि वहाँ सबका वध करना था। इसीसे वहाँ *'मायानाथ'* विशेषण दिया। यहाँ *'कृपाल'* विशेषण दिया, क्योंकि यहाँ सबके प्रेमके कारण कृपालुतासे कौतुक किया है। गौड़जीका मत है कि माया वहाँ भी थी और यहाँ भी। अमितरूप प्रकट करना माया है।)

निशिचर १४००० अत: १४००० रूप	३-अवधवासी अमित अत: ***'अमित रूप प्रगटे.......'***
ये किसीसे न मर सकते थे, श्रीरामजीने उन्हें मारा	४-१४ वर्षके वियोगसे उत्पन्न दु:खरूपी राक्षस किसीसे नाश होने योग्य न था, वह रामदर्शनसे नष्ट हुआ
राक्षस वरदानसे प्रबल हुए थे	५-वियोग-दु:ख पिताके वरदानसे प्रबल

२ ***'अमित रूप प्रगटे.......'*** इति। (क) भगवान् प्रेमसे प्रकट होते हैं, यथा—***'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना', 'प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी।'*** (१। १८५। ५, ७); इसीसे प्रथम सब लोगोंका प्रेम कहकर कि वे सब प्रेमातुर हैं, तब श्रीरामजीका अमितरूपसे प्रकट होना कहते हैं। अमित लोगोंका प्रेम है अत: ***'अमित रूप प्रगटे।'*** (ख) ***'तेहि काला।'*** कोई कहे कि अमित रूप प्रकट करनेमें विलम्ब हुआ होगा तो उसपर कहते हैं कि कुछ भी विलम्ब न हुआ उसी समय अमितरूपसे प्रकट हो गये। (ग) ***'जथा जोग.......'*** इति। अर्थात् जो जैसा है उसको वैसा मिले। सबके मिलनेको अमितरूप प्रकट करना और सबसे यथायोग्य मिलना यह प्रभुकी कृपालुता है अत: ***'कृपाला'*** कहा। आ० रा० में भी ऐसा ही कहा है। यथा—'**रामोऽप्यालिंग्य भरतं कृत्वा रूपाण्यनेकशः॥ ८४॥ एककाले जनान् सर्वान्पृथक् स परिषस्वजे।**' (आ० रा० १। १२)।

पां०—***'यथायोग्य'*** यह कि किसीको प्रणाम किया, किसीसे गले लगकर मिले, किसीको गोदमें ले लिया। किसीकी गोदमें बैठे इत्यादि और स्त्रियाँ आदि तथा और जो मिलनेके योग्य न थे उनपर कृपादृष्टि की।

नोट—यथायोग्य सबसे मिले। इस सम्बन्धमें भागवतमें भगवान् कृष्णका आगमन द्वारकापुरीमें मिलान-योग्य है। वहाँ भी भगवान्ने बन्धु-बान्धवों और अपने अनुगत पुरवासियोंसे मिलकर सबका यथायोग्य सम्मान किया। किसीको सिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अभिवादन किया, किसीको गले लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीको मन्द मुस्कान और कृपादृष्टिसे कृतार्थ किया, किसीसे कुशल-प्रश्न किया, ब्राह्मणोंसे लेकर श्वपचोंतक सबको आश्वासन दिया, सबको अभीष्ट वर दिया तथा सबका सम्मान किया।—***'जथा जोग'*** से यह सब जना दिया। यथा—'**भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम्। यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः। आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः॥**' (१। ११। २१-२२)

कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नरनारि बिसोकी॥ ६॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥ ७॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सील गुन धामा॥ ८॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥ ९॥

अर्थ—श्रीरघुवीरने कृपादृष्टिसे देखकर सब स्त्री-पुरुषोंको शोकरहित कर दिया॥ ६॥ भगवान् रामचन्द्रजी क्षणमात्रहीमें सबसे मिल लिये। हे उमा! यह भेद किसीने भी न जाना॥ ७॥ इस प्रकार (अनेक रूप प्रकट करके) शील और गुणोंके धाम रामचन्द्रजी सबको सुखी करके आगे चले॥ ८॥ कौसल्या आदि सब माताएँ ऐसी दौड़ीं मानो नयी बिआयी हुई गऊ बछड़ेको देखकर दौड़ी हो॥ ९॥

टिप्पणी—१ *'कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी·········'* इति। (क)—*'रघुबीर'*। वीर तीन प्रकारके होते हैं—दानवीर, युद्धवीर और दयावीर। यहाँ *'कृपादृष्टि'* कहकर *'रघुबीर'* से दयावीर सूचित किया। पुनः, शोक बड़ा भारी वीर है जो सबको दुःख दे रहा था उसको श्रीरामजीने नाश किया। अतः वीर कहा। शोक विज्ञानसे जाता है, यथा—*'सोक निवारेउ सबहि कर निज बिज्ञान प्रकास।'* (२। १५६) श्रीरामजीने उसका नाश कृपादृष्टिसे कर दिया। (ख)—प्रथम पुरवासियोंका श्रीरामजीको देखना लिखते हैं—*'प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी।'* इनके दर्शनसे वियोगजनित विपत्ति नाशको प्राप्त हुई, यथा—*'जनित बियोग बिपति सब नासी।'* अब श्रीरामजीका देखना लिखते हैं और कहते हैं कि जब रघुनाथजीने कृपादृष्टिसे सबको देखा तब सब विशोकी हो गये अर्थात् संसारसे निवृत्त हुए, संसार छूटा। यथा—*'जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥ ते सब भए परम पद जोगू॥'* (२। २१७) पुनः भाव कि जो मिलने योग्य थे उनसे मिले और जो मिलने योग्य न थे उन्हें कृपादृष्टिसे देखकर विशोक किया।

मा० म०—१ प्रथम कहा कि प्रभुके दर्शनसे सब पुरवासियोंका 'वियोगजनित दुःख' जाता रहा। पर उनके हृदयमें अङ्कमालिका करनेकी पीर रह गयी थी, यह लालसा श्रीरामजीसे मिलनेपर पूरी हुई, इसी पीरके दूर करनेके लिये प्रभुने अनेक रूप धारण कर सबसे भेंट की। पर जो माधुर्यमें नीच जातिके थे और जिनसे अङ्कमालिका करना उचित न था उनके दुःखको कृपादृष्टिसे अवलोकन करके नाश किया।

२ नर-नारिको कहकर फिर *'छन महिं सबहि मिले'* कहा। इसके अन्तर्गत यह भाव है कि घरेलू जानवर मूसा, बिल्ली, मोरादिकोंसे मिले—यह *'हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर। पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥'* (२। ८३), *'राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥'* का उत्तर है।—(सभी पशु-पक्षी रामवियोगसे दुःखी ही थे, यह अयोध्याकाण्डमें स्पष्ट कहा है। घोड़ोंकी दशा सुमन्तजीके लौटनेपर देख लीजिये। अतः इन सबसे भी मिलकर कृपादृष्टिपात इत्यादिसे इनको भी सुखी किया। इस तरह तीन प्रकारसे रामचन्द्रजी सबसे मिले, यह दिखानेके लिये यहाँ तीन बार तीन तरहकी बातें कहीं—*'जथा जोग मिले सबहि कृपाला'*, *'कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी'* और *'छन महँ सबहि मिले।'*

टिप्पणी—२ (क) *'छन महिं सबहि मिले'* इसीसे *'भगवाना'* कहा, यह भगवान्‌का काम है। (ख) *'उमा मरम यह काहु न जाना'* इति। यह बात शङ्करजी जानते हैं क्योंकि ईश्वर हैं। यही बात वे पार्वतीजीसे कहते हैं। श्रीरामजी अपना ऐश्वर्य नहीं जनाते, इसीसे यह मर्म किसीने न जाना। [कविने कैसे जाना? शङ्करजीके रामचरितमानससे जो उन्हें गुरुद्वारा प्राप्त हुआ। दूसरे, गुरुपदरजकी कृपा तथा *'हिय हरि के प्रेरे'* से इत्यादि। यह रहस्य है जो शिवजीने स्वयं अपनी ओरसे बतलाया। यह *'औरौ रामरहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥'* (१। १११। ३) श्रीपार्वतीजीके इस प्रश्नके उत्तरमें कहा। वीरकविजी यहाँ 'तृतीय विशेष अलङ्कार' कहते हैं]।

पं० रा० व० श०—मर्म किसीने न जाना। समझते रहे कि हमपर सबसे अधिक प्रीति है, सबसे प्रथम हमसे ही मिले। यह सोचकर कि किसीसे कहनेकी यह बात नहीं है। कोई किसीसे यह न कहता था कि हमसे प्रथम मिले।—[आ० रा० में लिखा है कि मिलनेके पश्चात् वे दूसरोंको अपने ही समान प्रसन्न देखकर विस्मित हुए कि मिले तो हमसे ही प्रथम और प्रसन्नता इनको भी हमारी-सी है। अतः मनमें समझ गये कि प्रभु सबसे मिल चुके, पर कैसे मिले यह किसीने न देखा, न अनेक रूप देखे और न दूसरोंसे मिलते देखा।]

गौड़जी—*'प्रेमातुर सब लोग निहारी' 'उमा मरम यह काहु न जाना'* इति। अयोध्याके सभी लोग प्रेमातुर थे, सभी चाहते थे कि हम ही सबसे पहले भगवान्‌से मिलें। भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंके मनोरथको सदा पूर्ण करते हैं, इसीलिये 'कृपालु' अपने अमित मोहनरूपसे प्रकट हुए और जिससे जैसा सम्बन्ध था; गुरु, लघु, दास, सखा सबसे यथायोग्य मिल लिये—यह सब काम एक क्षणमें हुआ। आपके रूपपर

और शीलपर हर एक ऐसा मोहित हो गया कि अपनी सुधबुध भूल गया और उस अपार भीड़में भी एकान्त मिलनका अपरिमित आनन्द प्राप्त हो गया। हर एकने समझा कि श्रीरामजी हमसे ही सबसे पहले मिले और यह एक-दूसरेसे कहनेकी बात न थी। इसीलिये मायानाथके इस कौतुकका रहस्य किसीने न जाना। जिन लोगोंसे अङ्गस्पर्शपूर्वक मिलना नहीं था उनसे कृपादृष्टिद्वारा अभिवादन हुआ, क्या स्त्री, क्या पुरुष—सबने यही समझा कि श्रीरामचन्द्रजीकी निगाहें मुझसे ही मिल रही हैं, वे मेरी ओर देख रहे हैं और मेरा ही गुप्त या प्रकट अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं।

नोट—'*एहि बिधि सबहि*.........' इति। (क) '*एहि बिधि*' अर्थात् लोकमर्यादानुसार जिनसे जिस तरह मिलना चाहिये, उनसे उसीके अनुसार यथायोग्य मिलकर, जिनसे उस तरह नहीं मिल सकते थे, जो कृपावलोकनके अधिकारी थे उनपर कृपादृष्टि करके और पशु-पक्षी आदिके पास जाकर जैसे प्रेम दरसाया जाता है, उस प्रकार उनसे मिलकर उनपर प्रेम दरसाकर। (ख) '*सबहि सुखी करि*'—मर्यादानुसार सबसे मिले। सबको चाह थी सबसे पहले दर्शन पानेकी, वह रुचि सबकी एक साथ पूरी हुई, अतः सभी एक साथ सुखी हुए। '*राम*' सदा आनन्दनिधान हैं, सुखधाम हैं, उन सुखराशिके कणमात्र सुखसे अनन्त ब्रह्माण्ड सुखी होते हैं, एक श्रीअवधपुरवासियोंको क्षणमात्रमें सुखी कर देनेमें क्या आश्चर्य है, यह भाव सूचित करनेके लिये '*एहि बिधि सबहि सुखी*' करनेमें '*राम*' कहा। यथा—'*जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥ सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥*' (१। १९७) पुनः भाव कि आप सबमें रमण करते हैं, जो जहाँ था वहीं प्रकट होकर उसे सुखी कर दिया, अतः '*राम*' कहा। यथा—'*यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥*' (ग) '*आगे चले*' इति। आगे बढ़नेका कारण कि माताएँ खिन्न हैं, अति सुकुमार हैं तथा भीड़के कारण वे आगे आ नहीं सकतीं और इन्हें यहीं रहना तो है ही नहीं। बाबा हरिदासजी कहते हैं कि आगे चले जिसमें जो देख चुके हैं वे पीछे-पीछे देखते आवें और जिन्होंने अभी नहीं देखा है वे देख सकें। (घ) सबका सम्मान किया, सबसे मिले, सबका मनोरथ एक साथ सिद्ध किया। अतः शीलधाम कहा और अमित रूप प्रकट कर सबसे मिलनेका मर्म किसीको विदित न हुआ, इससे गुणधाम कहा।

टिप्पणी—३ '*कौसल्यादि मातु सब धाई।*.........' इति। (क) '*सब धाई*' कहकर जनाया कि श्रीरामजीमें सबका प्रेम श्रीकौसल्याजीका-सा है। कौसल्याजी सबसे बड़ी पटरानी हैं अतः उनको आदिमें कहा। (ख) '*धेनु लवाई*'। धेनुका अर्थ ही है लवाई गऊ, तब दोनों शब्द क्यों लिखे? इससे कि केवल '*धेनु*' कहनेसे भाव स्पष्ट न होता, स्पष्ट करनेके निमित्त '*लवाई*' भी कहा। '*निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई*' कहकर सूचित किया कि श्रीरामजीमें माताओंका केवल पुत्रभाव है, जैसे गाय अपना बच्चा समझकर दौड़ती है। यहाँ केवल वात्सल्यभाव है। '*निरखि*' से जनाया कि श्रीराम-लक्ष्मण-सीता तीनों देख पड़े, क्योंकि सब लोगोंसे मिलकर वे आगे चले हैं। भीड़ भारी थी इसीसे माताएँ सबसे पीछे आयीं, जिसमें श्रीरामजीसे अच्छी तरह मिलते बने।

पं० रा० व० श०—'*धेनु*' शब्द यहाँ दिया, क्योंकि प्रथम-प्रथम बियायी हुई गौको धेनु कहते हैं। और '**गृष्टिः सकृत् प्रसूता गौः**' का तात्पर्य यह कि जो एक ही बार बियाये उसको गृष्टि कहते हैं। धेनुको वत्स अत्यन्त प्यारा होता है। वात्सल्य गौसे अधिक किसीमें नहीं है, यह ऋषियोंने परीक्षासे तथा अनुभवसे निश्चय कर लिया है; इसीलिये वात्सल्यभावमें इसीका उदाहरण दिया जाता है।

रा० शं०—'*धेनु लवाई।*' कौसल्याजी विस्मित हैं। वे बारम्बार सोचती हैं कि '*अति सुकुमार जुगल मेरे बारे*.........*कवन भाँति लंकापति मारा*' '*निसिचर सुभट महाबल भारे*' से जीते बचे, इससे वे इनका नया जन्म मानती हैं। पुनः, अमोघ शक्तिसे लक्ष्मणजीका अच्छा हो जाना लक्ष्मणजीका नया जन्म होना ठीक ही है और वे जीवित न होते तो श्रीरामजी भी प्राण दे देते, इस तरह भी दोनोंका नया जन्म मानती हैं—इस भावको दर्शित करनेके लिये हालकी ब्यायी गऊकी उपमा कविने दी।

(हरिगीतिका छन्द)

छन्द—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरषि सुख अगनित लहे॥

अर्थ—मानो नवीन बियायी गौ छोटे बछड़ेको (जिसे माताके दूधका ही आधार है, जो अभी तृणादि चरनेमें असमर्थ है) घरमें छोड़कर परवश वनमें गयी थीं, सो दिनका अन्त होनेपर नगरकी ओर हुंकार करती (बँबाती हुई) थनसे दूध गिराती हुई दौड़ी हों। प्रभु सब माताओंसे अत्यन्त प्रेमसे मिले और बहुत प्रकारसे बहुत प्रकारके कोमल वचन कहे। वियोगजनित सब कठिन विपत्ति दूर हुई और उन्होंने अगणित हर्ष और सुख पाये।

टिप्पणी—१ उत्प्रेक्षा—(१) माताएँ धेनु हैं। (२) श्रीराम-लक्ष्मण वत्स हैं। (३) गऊ अहीरके वश बछड़ा छोड़कर वनको गयी और यहाँ कर्मवश माताओंका श्रीराम-लक्ष्मणसे वियोग हुआ—[रा० प्र०—वरके अनुरोधसे परबस कहा]। (४)—१४ वर्षका व्यतीत होना यही दिनका अन्त होना है। (५)—पुर वन है, यथा—*'नगर सकल बन गहबर भारी'*—(अ०)। (६) जहाँ राम वहीं अयोध्या—*'तहहिं अवध जहँ राम निवासू'* इस तरह वन पुर है।—(दूसरे, माताएँ सब चित्रकूट गयी थीं ही, अन्तिम वियोग श्रीरामजीसे वहीं हुआ। गयी थीं कि साथ लौटेंगी पर कर्मवश वहाँसे माताओंको श्रीरामजीको वहीं छोड़कर, अवधरूपी वनको जाना पड़ा था। इस प्रकार मातारूपी गौका परवश वन जाना भी ठीक घटित होता है और विपरीतता मिट जाती है।) (७)—प्रेमसे गायके थनसे दूध निकलता है। इस तरह प्रेमसे माताओंके स्तनोंसे दूध निकलने लगा, यथा—*'गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्त्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥'* यहाँ दृष्टान्तका एक ही अङ्ग लिया गया है, वह है—अत्यन्त प्रेमसे मिलनेके लिये पुत्रोंकी ओर धावना।

श्रीनंगे परमहंसजी—'जैसे ब्यायी गऊको उसका रक्षक जबरदस्ती रक्षाहेतु बनमें चरने ले जाता है और दिनके अन्तमें ले आता है तब बछड़ेको धावती है। उसी तरह गऊरूप माताओंको रक्षकरूप भरतजी बछड़ारूप श्रीरामजीसे छुड़ाके जबरदस्ती चित्रकूटसे उनकी रक्षा-हेतु वनरूप अयोध्यामें लाये हैं।'

वीर—यहाँ उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है पर उपमामें विपर्यय है; क्योंकि माताएँ घरसे आती हैं और रामजी वनसे। जो स्थान रामचन्द्रके लिये कहना था वह माताओंको और जो माताओंके लिये कहना था वह रामचन्द्रजीके लिये कहा गया है। इस उलट-पलटमें 'द्वितीय असङ्गति' है।

टिप्पणी—२ *'अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं।'''''''''* इति। (क) धावनेमें कौसल्याजी आदिमें हैं और सब माताएँ पीछे हैं, पर श्रीरामजीके भेंटनेमें सब माताएँ आदिमें हैं, यह जनानेके लिये *'प्रभु सब मातु भेटी'* कहा। सब माताओंसे पहले मिले क्योंकि धर्मशास्त्रमें आज्ञा है कि अपनी मातासे विमाताको दशगुण अधिक माने, यथा—**'मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा'**। कौसल्याजीसे मिलना आगे कहेंगे। (ख) माता सब अति प्रेमसे धायी हैं इसीसे श्रीरामजी भी सबसे *'अति प्रेम'* से मिले। (ग) *'प्रभु सब मातु भेटी',* यहाँ *'प्रभु'* ऐश्वर्यवाचक पद देकर जनाया कि जैसे पुरवासियोंसे प्रभुतापूर्वक मिले वैसे ही माताओंसे मिलनेमें प्रभुतासे मिले। सात सौ माताएँ हैं, उनसे मिलनेके लिये ७०० रूप धारण किये—*'पालागन दुलहिनिन्हि सिखावति सरिस सासु सत साता'* (गी० बा०)। (घ) यहाँ दिखाया है कि श्रीरामजी मन, वचन और कर्म तीनोंसे माताओंके भक्त हैं। *'अति प्रेम'* मनका, मनसे माताओंमें प्रेम किया, तनसे भेंट और वाणीसे *'मृदु बचन'* कहे।

नोट—*'मृदु बचन बहु बिधि कहे'* अर्थात् माताओंकी दशा देख शोक और ग्लानि दूर करनेवाले बहुत प्रकारके विनीत वचन कहे। (रा० प्र०) *'बहु बिधि'* यह कि दैवाधीन वियोग हुआ, १४ वर्ष